संस्थापक सम्पादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

वर्ष - १७
अंक १

सिद्ध गुफा प्रकाशन संवाई. आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक

श्री सिद्धगुफा, मवाई

- तस्मै नमः कस्मै १
- योग साधना कैसे (विशेष लेख)
  योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २
- मंत्र विवेक, श्री शिवनाथ जी मेहरोत्रा १३
- योग का तात्पर्य और चरित्र निर्माण
  श्री वैद्यनाथ जी महाराज १७
- योगिराज श्री मुलखराज जी
  श्री गुरुदेव जी द्वारा २०
- महाप्रभु श्री रामलाल जी तें (कविता)
  श्री रामसजीवन सिंह २८
- अनात्माभिमान योग, आचार्य चन्द्रहास शर्मा ३०
- यौगिक प्रश्नोत्तरी, श्री गुरुदेव जी द्वारा ३७
- योग की भूमिका और कबीर साधना
  डा० श्री रमेशचन्द्र मिश्र ४४
- भूमिका की आवश्यकता
  श्रीमती सरला बाखाम ५४
- आश्रम सेवा बनाम गुरु-सेवा
  डा० श्री विजय सिंह ६४
- शक्ति पर्व और चतुर्थ आयाम
  श्रीमती राजकुमारी मेहरा ७३
- श्री गुरु-महिमा, श्री रामयश उपाध्याय ८०
- श्री गुरु-आज्ञा पालन श्री कृष्णकुमार पाण्डेय ८४
- पत्र-पुष्पं-फलं-तोयम् ८७
- शंकर की सत्ता (कविता)
  महाकवि शंकर ८८
- एक दिन की बात ९१

संयुक्त सम्पादक

'दिव्य'

अप्रैल १९८४

वार्षिक मूल्य २५ रुपया।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सनाई (गल्लादपुर) आगरा ।

१७
१

ध्यात्वं ध्यात्वं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्भुवि विचरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तस्याप्यर्थान् बहुविषयं योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

अप्रैल
१९८४

❀ तस्मै नमः कर्मणे ❀

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः ।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥

अर्थात्

जिसने ब्रह्माण्डरूपी बर्तन के भीतर ब्रह्मा को कुम्हार की तरह नियुक्त किया, विष्णु को दशावतार ग्रहण करने के रूप महाविपत्ति में डाल दिया, जिसने महादेव को भी हाथ में खप्पर लेकर भीख मांगने के लिए बाध्य किया और जिस के कारण सूर्य को भी आकाश में नित्य भ्रमण करना पड़ा उस कर्म को ही नमस्कार है।

हमारा विशेष लेख :—

योग की साधना कैसे ?

* आनन्दकन्द योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आनन्दकन्द अखिलात्मा त्रिजगत्-पावन श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में एक योगाभ्यासी को योगमार्ग में कुशलता प्राप्त करने के लिये अपने आपको किस प्रकार के नियमों में आबद्ध करके चलना चाहिये, इसका वर्णन बड़ी ही स्पष्टता से किया है। यदि मनुष्य ठीक प्रकार से भगवद् आज्ञा का पालन करता हुआ अपने आपको इस अभ्यास के सांचे में ढाल लेता है तो वह कल्याण के उच्चतम लक्ष्य को अवश्य-अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। पढ़िये श्री मद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में वर्णित पवित्र आदेश—

योगी युञ्जीत सततम्,
आत्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा,
निराशीरपरिग्रहः॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य,
स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं,
चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा,
यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्,
योगमात्मविशुद्धये॥
समं कायशिरोग्रीवं,
धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं,
स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥
प्रशान्तात्मा विगतभी,
र्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो,
युक्त आसीत मत्परः॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं,
योगी नियत मानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां,
मत्संस्थामधि गच्छति॥

अर्थात् योगी को चाहिये एकान्त में बैठ करके सब प्रकार की कामनाओं से खाली होकर, अपरिग्रह के भाव को मन में पूर्णतया कायम करके, अपने आपको यतचित्तात्मा बना करके एवं एकान्त स्थान में जो भी पवित्र स्थान हो वहाँ पर जो न बहुत ऊँचा और न ही बहुत नीचा हो उस पर पवित्र मृगचर्म

या कुशा आदि के आसन को बिछा करके, अपने मन और इन्द्रियों की क्रियाओं पर पूरा पूरा नियन्त्रण करके एवं मन को एकाग्र करके, आत्म-कल्याण के निमित्त अकेला बैठ करके, योगाभ्यास करे। स्थिर भाव से बैठ करके अपनी काया, सिर और ग्रीवा को समतोल एक स्तर में रखे। एवं अपनी विविध दिशाओं में न देखकर, स्व नासिका भाग को देखते हुए योगाभ्यास करे। जो योगी इन नियमों का पालन करता हुआ नियमित रूप से अपने अभ्यास को निर्भय होकर अपने मन को नियंत्रण में करके, पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ, मन को संयमित करके, मत्परायण होकर नियमानुवर्तिता के साथ अपने अभ्यास को करता रहेगा वह निर्वाण व परम शान्ति को और मेरी सिद्धि रूपा स्थिति को प्राप्त कर लेगा।

उपरोक्त सभी नियमों का पालन वही कर सकता है जो मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए, सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन या वज्रासन आदि में बैठकर योगाभ्यास करे। क्योंकि उपरोक्त इन सभी आसनों में मेरुदण्ड स्वतः ही सीधा रहता है। अभ्यासी साधक के लिए मेरुदण्ड को सीधा रखना बहुत अनिवार्य रहता है। क्योंकि मेरुदण्ड के अन्दर ही सुषुम्ना की स्थिति है। योगियों के योगाभ्यास का आधार सुषुम्ना नाड़ी ही है।

उपरोक्त आसनों में नियमित अभ्यास से बैठने पर अपने आप ही सुषुम्ना में प्रगति हो जाती है। सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों गुणों के भावों को लेकर चलने वाली तीन और नाड़ियाँ अव्यक्त रूप से स्थित रहती हैं। इनमें से सुषुम्ना के मध्य भाग में ब्रह्मनाड़ी और आसपास दायें बायें भागों के अन्दर चित्रणी एवं वज्रा नाड़ियाँ गतिशील रहती हैं।

साधक के लिए बहुत ही आवश्यक है कि साधक अपने आपको स्वस्थ बनाये। तभी वह ब्रह्मनाड़ी के अन्दर अपने मन को प्रवेश करा सकता है, एवं मन के ब्रह्मनाड़ी में स्थित होने पर ही योगी समाधि स्थिति को प्राप्त कर सकता है। ऊपर जिन आसनों का संकेत किया गया है उनको विधिपूर्वक किन्हीं योगाश्रमों में जाकर यथाशक्ति के साथ सीख लेना चाहिए। वैसे तो यौगिक व्यायाम सारा ही साधक के लिए श्रेयस्कर है। किन्तु फिर भी जिन आसनों का ऊपर नामोल्लेख किया है वे सब आसन तो योगाभ्यासी को अपने अभ्यास क्रम में लाने ही चाहिये। कदाचित् कोई वृद्ध व्यक्ति है या जिसके लिये इस प्रकार आसनों का अभ्यास कठिन मालूम पड़े तो इसी लेख में आगे चलकर बतलायी हुयी विधि के अनुसार यदि वह प्राणायाम का अभ्यास करे और उसकी बतलायी हुयी विधि

के अनुसार दीक्षा करके अपने मन को एकाग्र करने की चेष्टा करेगा तो अवश्य ही उसको सफलता मिलेगी। यद्यपि उपयोगी नियम की बात तो यही है कि साधकों को किसी यौगिक शिक्षा प्राप्त योगी से अथवा योग-शिक्षण केन्द्रों में पहुँचकर यौगिक शिक्षा यथाविधि प्राप्त करना चाहिए। तभी वे योगासनों के स्वरूप को भली प्रकार से जान सकेंगे किन्तु सभी को सभी जगह योग शिक्षक मिल जायें या योग शिक्षण संस्थायें मिल सकें यह प्रायः सम्भव नहीं हो पाता। अतः योगाभ्यासियों के लिये ऊपर इस लेख में जिन आसनों का संकेत किया गया है उनके ठीक-ठीक स्वरूप को भी हम नीचे शास्त्रोक्त विधि से समझाये देते हैं।

सबसे प्रथम सिद्धासन की उत्कृष्टता है। ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करने वाले ब्रह्मचारियों एवं संन्यासियों के लिये तो सिद्धासन परम उपयोगी है ही। वैसे अन्य सभी के लिए भी उपयोगी हो सकता है। पर जो लोग गृहस्थ आश्रमी हैं और जो सन्तानोत्पादन के लिये प्रयत्नशील रहते हैं उनको सिद्धासन का बहुत अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिये। क्योंकि मूत्रेन्द्रिय के निम्न भाग में वीर्य वाहिनी नाड़ी रहती है। सिद्धासन के अधिक अभ्यास करने से वह नाड़ी दब जाया करती है और उस नाड़ी को दब जाने से वीर्य ठीक रूप से प्रवाहित नहीं हो पाता। इसलिये गृहस्थी लोग सिद्धासन की अपेक्षा स्वस्तिक आसन में या आगे बतलायी हुई विधि के अनुसार पद्मासन में भी योगाभ्यास कर सकते हैं।

उपरोक्त चारों आसनों का हम थोड़ा सा वर्णन यहाँ योगाभ्यासियों के हितार्थ लिख रहे हैं।

सिद्धासन :—

योनिस्थान कमङ्घ्रिमूल ,
घटित कृत्वा दृढं ।
विन्यसेन्मेढ्रे पादम-
थैकमेव हृदये कृत्वा ।
हनुं सुस्थिरम् स्थाणुः ।
संयमितेन्द्रियोऽचल दृशा,
पश्येद्भ्रुवोरंतर, ह्येतन्मोक्षकपाट ।
भेदजनकंसिद्धासनं प्रोच्यते ।

अर्थात् :

गुदा और लिंग इन्द्रियों के मध्य भाग में जो (योनि) स्थान अर्थात् सीवनी है, उससे बायें पैर की ऐड़ी को मिलाकर और दाहिने पैर की ऐड़ी को उसी स्थान में लिंग भाग के ऊपर जमाकर और हृदय के समीप छाती पर ठोड़ी को लगाकर सब प्रकार से इन्द्रिय द्वारों को रोककर योगी बिलकुल निश्चल भाव से अपनी दृष्टि को स्थिर रखकर भ्रुकुटी के मध्य

भाग को देखता रहता है और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठता है। इस स्थिति को ही मोक्ष-द्वार को खोलनेवाला सिद्धासन कहते हैं।

विधि—मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठ जाओ। अपने बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार से योनि स्थान सीवनी में रखो और अपने दाहिने पैर की एड़ी को लिंगेन्द्रिय के ऊपर रखो और निश्चल भाव से जालंधर बन्ध लगाकर भ्रूमध्य को देखते रहो।

अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर बैठकर रखो यही सिद्धासन करने की सरल विधि है।

समय—यह आसन जहाँ आसन क्लासों में कराये जायें वहाँ पहले अभ्यासी साधक को अपने शरीर का बलाबल देखकर एक मिनट से शुरु करना चाहिए। श्रेणी में क्रमानुसार अभ्यास आधा-आधा मिनट प्रति-दिन बढ़ाते रहना चाहिये और जहाँ अभ्यास समाधि के लिये किया जाय वहाँ पर पहले थोड़ा-थोड़ा दो-दो मिनट से बढ़ा करके घण्टों तक ले जाया जा सकता है। 'सिद्धासन' का अधिक अभ्यास गृहस्थियों को अधिक लाभ-प्रद नहीं है किन्तु साधारण अभ्यास में कोई हानि नहीं है।

लाभ—इस सिद्धासन के गुण इस प्रकार कहे हैं—

चतुरशीति पीठेषु,
सिद्धमेव सदाऽभ्यसेत।
द्वासप्तति सहस्राणां,
नाडीनां मलशोधनम्।
आत्मध्यायी मिताहारी,
यावद् द्वादशवत्सरम् सदा।
सिद्धासना भ्यासाद्योगी,
निष्पत्ति माप्नुयात्॥

अर्थात् चौरासी आसनों में से सिद्धासन को मुख्य माना है। यह आसन बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों को शुद्ध करता है जो व्यक्ति आत्मध्यान और मिताहारी होकर सदा सिद्धासन का अभ्यास करता है वह अवश्य सिद्धि को पा जाता है। सिद्धासन सभी आसनों के फलों को देने वाला है। इसमें बिना किसी परिश्रम के मूलबन्ध उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्ध तीनों बन्ध स्वाभाविक बन जाते हैं। पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है :—

नासनं सिद्ध सदृशं, न कुंभ केवलोपमः।
न खेचरी समामुद्रा, न नाद सदृशोलयः।

अर्थात्

सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है। केवली कुम्भक के समान कुम्भक नहीं है, खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है। और नाद के समान लयता देने वाला कोई साधन

नहीं है। अतः मोक्षाभिलाषी साधकों को परमात्मा प्राप्ति के लिए सिद्धासन गृहस्थियों के लिये विशेष उपयोगी नहीं। यह बात सर्व-साधारण रूप से तो भ्रम ही है किन्तु इतना अवश्य है कि गृहस्थी संतलीन, बारम्बार, धृष्टे नित्य सिद्धासन का अभ्यास करते हैं उनके लिये हो सकता है विशेष लाभदायक न हो क्योंकि योनि स्थान के अन्दर लगाई हुई एड़ी वीर्यवाहिनी नाड़ी को संकुचित करती है और इसके साथ-साथ मूलबन्ध लग जाने के कारण अपान का ऊर्ध्वाकर्षण होता है। ऐसी स्थिति में गृहस्थी लोग स्वस्तीक आसन का अभ्यास कर लें, जिससे कि उनको किसी को कोई हानि होने की सम्भावना ही न रहे।

स्वस्तीक आसन-इस स्वस्तीक आसन का स्वरूप बहुत ही सरल है और सभी के लिये यह पूरा-पूरा लाभदायक रहता है। यथा—

जानुवोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायःसमासीनःस्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।

अर्थात्‌दोनों जानुओं के बीच दोनों पैरों के तलुओं को दबाकर एवं समकाय शिरोग्रीव होकर आनन्दपूर्वक सीधा बैठे। इसी को स्वस्तीक आसन कहते हैं। इसका फल भी प्रायः सिद्धासन के समान ही है। और यह अभ्यासी व अनाभ्यासी सभी के लिये ठीक रहता है।

विधि—प्रथम साधारण स्थिति में बैठ जाओ और अपने बायें पैर के पंजे को पकड़ करके पिंडली और जंघा के बीच में अपने दोनों पैरों के पंजों को दबायें और समकाय शिरोग्रीव हो करके दोनों हाथों को सिद्धासन की तरह दबा करके मेरुदण्ड को सीधा करके बैठ जायें व दृढ़ता से अभ्यास करें। स्वस्तीक आसन का फल भी सिद्धासन के समान ही है।

समय—सरलतापूर्वक एक मिनट से आरम्भ करना चाहिये व धीरे-धीरे रोजाना दो दो मिनट बढ़ाते हुए घंटों तक ले जाना चाहिए।

लाभ—यह स्वस्तीक आसन ध्यानाभ्यास के लिए परम उपयोगी आसन है। इस आसन में बैठने पर सुषुम्ना की गति अपने आप हो जाती है। मन की एकाग्रता स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। यह सिद्धासन की अपेक्षा अधिक सरल है। इस आसन को गृहस्थी, विरक्त, संन्यासी महात्मा, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ सभी सरलता से कर सकते हैं।

पद्मासन—पद्मासन के दो प्रकार हैं—

१—बद्धपद्मासन २—मुक्तपद्मासन।

दोनों का अभ्यास प्रायः समान ही है। पद्मासन का वर्णन हठयोग प्रदीपिका में

निम्नांकित श्लोक में कहा गया है । साधक गण विधि को भली प्रकार से समझ कर के इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं । यह ठीक है कि यह आसन हठयोग से सम्बन्ध रखने वाला है किन्तु सभी के लिये उपादेय है ।

वामोरुपरि दक्षिणं हि चरणं
संस्थाप्य वामं तथा ।
दक्षोरुपरि पश्चिमेन विधिना
कृत्वा कराभ्यां दृढम् ॥
अङ्गुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं
नासाग्रमवलोकयेत् ।
एतद् व्याधि विकारविनाशन-करं
पद्मासनं प्रोच्यते ॥

अर्थात्

सीधे समभाव से बैठकर अपने दाहिने पैर को बांयीं जंघा पर दृढ़ता से रखें । इस प्रकार बांये पैर दाहिनी जंघा पर जमा कर रखें । इस के बाद अपने दोनों हाथों को पीठ पीछे से घुमाकर दाहिने हाथ से बांयी जंघा रखे हुए दाहिने पैर के अंगूठे को व दाहिने हाथ से बांयीं जंघा पर रखे हुए बांयें पैर के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़े । ठोड़ी छाती में लगाकर (अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाकर नासिका के अग्रभाग को देखें) इसी का नाम पद्मासन है । यह सभी व्याधियों का नाश करता है ।

समय—आधे मिनट से शनैः-शनैः दो मिनट तक और अभ्यास बढ़ जाने पर परमार्थाभिलाषी व्यक्ति कई-कई घण्टों का अभ्यास बढ़ाते रहते हैं ।

लाभ—प्राणायाम के अभ्यासियों के लिए यह परम श्रेयस्कर रहता है । कुण्डलनी को गति देता है । मन की एकाग्रता एवं भ्रूमध्य ध्यान के लिए परमोत्कृष्ट है । सभी व्याधियों को दूरकर आरोग्य प्रदान करता है ।

बद्धासन—इसके अतिरिक्त चौथा आसन योगाभ्यासियों के लिए परम उपादेय रहता है । यद्यपि बद्धासन कष्टसाध्य है, तथापि हठ योगियों के लिए उपादेय है । हठ योगी लोग इसी आसन के अन्दर कुण्डलनी शक्ति के जागरण के लिए शक्तिचालिनी मुद्रा के लिए प्रयोग करते हैं । परिणाम अत्यन्त शुभ होता है । सर्वसाधारण के लिए तो यह आसन जल्दी अभ्यास में नहीं आ सकेगा । कोई नये उम्र का अभ्यासी यदि अभ्यास करेगा तो परिश्रम अभ्यास परम आवश्यक रहेगा ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो
व्युत्क्रमेण समाहितौ ।
पादाङ्गुष्ठे कराभ्यां च
धृत्वा पृष्ठ देशतः ॥

जालन्धरं समासाद्य
नासाग्रम-वलोकयेत ।।
भद्रासनं भवेदेतत्
सर्वव्याधिविनाशकम् ।

विधि—अपने पैरों की दोनों एड़ियों को अण्डकोषों के नीचे उलटकर रखें इसके बाद अपने हाथों को पीठ की तरफ से घुमाकर दोनों पैरों को उलटकर आगे हुए अंगूठे को पकड़े (दाये पैर के अंगूठे को बायें हाथ से व बायें पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से पकड़े) तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध लगाकर (अपनी ठोढ़ी को छाती में लगाकर) नासाग्रभाग को देखें। इसी का नाम भद्रासन है।

समय—यह आसन कुछ कठिन है। पहले अभ्यास करने वालों के लिये तो असम्भव सा है। फिर भी अभ्यास से सभी कुछ सम्भव है। अतः इस आसन का अभ्यास करने वाले साधकों को यह पहले १० सेकण्ड या शरीर के बलाबल को देखकर २० सेकण्ड से आरम्भ करें। उसके बाद दस-दस सेकण्ड प्रतिदिन बढ़ाते हुए घण्टों तक ले जा सकते हैं। किन्तु व्यायाम की दृष्टि से अधिक से अधिक दो मिनट प्रतिदिन का अभ्यास ही ठीक रहेगा।

फल—यह आसन शरीर में स्फूर्ति देता है। सम्भवतः इसी कारण से सभी प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला है। यह कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता है।

शवासन—इसके बाद आता है। शवासन विश्रान्तिकर है, इस आसन में साधक को बिल्कुल सीधा लेट जाना चाहिये इधर-उधर करवट नहीं बदलना चाहिये। ऐसा करने से स्वभावतः ही सुषुम्ना नाड़ी को गति हो जाया करती है। सुषुम्ना की गति होना ही मनुष्य के लिए परम चमत्कार रहता है। क्योंकि इड़ा और पिंगला का प्रवाह मन को जगत में प्रवाहित करता है। कदाचित् शवासन का अभ्यासी इड़ा और पिंगला के प्रवाह को दबाकर सुषुम्ना को प्रवाहित रखता है तो उसका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और मन को अन्ततः शाश्वत शान्ति की ओर ले जाया करता है।

इस लेख में ऊपर हमने जिन आसनों का संकेत किया है वे सभी इड़ा-पिंगला के प्रवाह को दबाकर सुषुम्ना को जाग्रत करने वाले हैं। मेरुदण्ड को सीधा रखना ही, सुषुम्ना को प्रवाहित करने का एक सरल साधन है। अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने योगी के आहार-विहार के विषय में दो श्लोकों में कुछ संकेत किया है जिसको बुद्धिमान साधक भली प्रकार से पढ़ करके अपने उपयोग में अवश्य-अवश्य लावें। वे दोनों श्लोक इस प्रकार है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात् जो लोग अति मात्रा का भोजन करते हैं उनको योग सिद्ध नहीं हो पाता और जो लोग बिल्कुल भी नहीं खाते वह भी उचित नहीं है। और जो लोग आलस्य को प्रधान बनाकर अधिक सोते रहते हैं उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। क्योंकि उनका आलस्य में कालयापन होता है। योगाभ्यास के लिए आलसी लोग समय निकाल ही नहीं पाते। और जो लोग समय व्यर्थ के वार्तालाप में गवाते रहते हैं उनको भी योग सिद्ध नहीं हो पाता। पर जो ठीक समय पर उचित आहार करते हैं और विहार आदि के अन्दर भी अपने आपको संयमित रखते हैं एवं अपनी नियमानुवर्तिता के पक्के रहते हैं उनको पूर्णरूपेण योग दुःखों का विनाश होता है। ठीक इसी प्रकार का संकेत भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में किया है। एक साधक का जीवन किसप्रकार का होना चाहिये और उसको अपने रहन-सहन एवं निवास-स्थान को कैसा रखना चाहिये इसका पूरा-पूरा दिग्दर्शन निम्नांकित दो श्लोकों के अन्दर बहुत ही स्पष्टीकरण के साथ कर दिया है—

विविक्तसेवी लघ्वाशी
यतवाक्कायमानसः।
ध्यान योगपरो नित्यं
वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकारं बलं दर्पं
कामं क्रोधं परिग्रहम्॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म-
भूयाय कल्पते॥

अर्थात् जो साधक किसी पवित्र एकान्त स्थान में हल्का आहार करते हुए, अपने शरीर मन और वाणी पर पूर्ण नियन्त्रण रख कर वैराग्य को धारण कर नित्य नियमानुसार योग ध्यान करते हैं और अहंकार, बल का अभिमान, दर्प, काम, क्रोध एवं परिग्रह अर्थात् लोलुपता को छोड़ देते हैं वे लोग ममता रहित शान्त भाव को प्राप्त होकर ब्रह्मत्व की ओर बढ़ जाते हैं. साधक के लिए बहुत ही आवश्यक है कि वह उपरोक्त दो श्लोकों के अन्दर बताये हुए नियमों का पूर्णरूपेण पालन करे। अपनी वाणी, शरीर एवं मन पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखे। जो साधक इस प्रकार अपनी नियमावली का पालन करते हैं वह अवश्य ही

बहुत जल्दी उत्तम सिद्धियों को प्राप्त हो जाते है योगी को विचित्रलेषी, तपस्वी तो होना ही चाहिए किन्तु उसके साथ-साथ आहार शुद्धि की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है क्योंकि यह एक नियम की बात है कि–

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः ।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥

अर्थात् योगी साधक को चाहिये कि अपने आहार विहार को बिल्कुल शुद्ध रखे। आहार शुद्ध हो जाने पर ही सतोगुण बढ़ता है और सतोगुण के बढ़ जाने पर स्मृति उपस्थित हो जाती है। और स्मृत्युपलम्भ के बाद–

“चित्तमना कुलम् समाधियत”

अर्थात् आहार के शुद्ध हो जाने के बाद सतोगुण शुद्ध हो जाता है और सत्व शुद्धि के बाद अपने आप ही चित्त समाहित हो जाता है जिससे योगी के अन्दर सर्वसाक्षित भाव स्वतः ही आ जाता है। और सत्व शुद्धि और शुद्धि की पहचान है—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्–
प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्–
वृद्धं सत्वमित्युत ॥

अर्थात् जब योगी के रोम कूपों से प्रकाश की लहरें निकलने लग जायें तब समझ लेना चाहिए कि योगी सत्वस्थ हो चुका है। इस लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि योगी प्रथम अपने आहार को शुद्ध करे। भगवान श्रीकृष्ण ने सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रधान तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया है। उसमें से सतोगुण की वृद्धि करने वाला और सात्विक लोगों को पसन्द आने वाला सात्विक आहार ही योगी के लिये परम उपादेय है। सात्विक आहार के लक्षण इसप्रकार बताये गये हैं–

आयुःसत्वबलारोग्य–
सुखप्रीतिविवर्धनाः ॥
रस्याःस्निग्धाः स्थिरा हृद्या–
आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

अर्थात् जो आहार आयु के बढ़ाने वाले हैं और सतोगुण को बढ़ाने वाले हैं बल और आरोग्यता को देने वाले हैं जिन आहारों के खाने से मन में सुख और प्रीति बढ़े, ऐसे आहार सतोगुण प्रधान व्यक्ति को प्यारे हुआ करते हैं, और यह ही आहार मनुष्य के मन में सतोगुण की वृद्धि करते हैं। इस के अतिरिक्त जिन आहारों में कड़ुआ है और जिन आहारों में बहुत अधिक नमक डाला जाता है मिर्च मसाले आदि तीक्ष्ण आहार होते हैं और जो तीक्ष्ण और रूखा होते हैं ऐसे आहारों को रजोगुण प्रधान व्यक्ति खाते हैं और यह सब आहार

रजोगुण की वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त सड़े-गले जो पहले दिन के बनाये गये हैं ऐसे आहार तामस व्यक्ति को प्रिय होते हैं और तमोगुण बढ़ाते हैं। इसलिये योगाभ्यास करने वाले साधक को चाहिए कि वह शुद्ध एवं सात्विक आहारों का सेवन करे। और इसके साथ-साथ जैसा कि इसी लेख में ऊपर बताया जा चुका है साधक मिताहारी रहे। सुपथ्य व हल्का भोजन करे जिससे शरीर में उस अन्न का परिपाक जल्दी हो जावे। उपरोक्त सभी बातों का पालन करते हुए योगाभ्यासी साधक को अपनी कुछ नियमावली बनाकर रखनी चाहिये। जो लोग बेकार आलस्य प्रमाद के अन्दर जीवन व्यतीत किया करते हैं वे अपनी जिन्दगी के अमूल्य समय को व्यर्थ गँवाया करते हैं।

गृहस्थी साधक की दिनचर्या —

एक गृहस्थी योगी साधक को अपनी नियमावली इस प्रकार रखनी चाहिये—बाल, वृद्ध, युवा सभी को प्रातःकाल पौने चार बजे उठ जाना चाहिए जिससे ३-४५ से ५-३० बजे तक शौच स्नान एवं दन्त-मन्जन आदि से निवृत्त हो जावें।

साधक को चाहिये यदि उसके शरीर में कोष्ठबद्धता है तो प्रातःकाल उठते ही एक नींबू निचोड़ करके वह गर्म जल पीकर शौच जाया करे। तदुपरान्त शौचादि से निवृत्त होकर हस्त प्रक्षालन के लिए तीन बार बायें हाथ को मिट्टी लगाकर अलहदा धोवें और उस के बाद १२ बार मिट्टी लगाकर दोनों हाथों का प्रक्षालन करें। जहां तक हो सके जलपात्र लेकरके खुले मैदान में शौच के लिए जावें।

यदि जलपात्र लेकरके शौचादि निवृत्ति के लिए जाते हैं तो बायें हाथ को तीन बार मिट्टी लगा करके अलहदा धोवें और उसके बाद चार बार दोनों हाथों को मिट्टी लगाकर जल से धोवें व तदोपरान्त अपने पात्र को मिट्टी से मांज लें। उसके बाद फिर चार बार दोनों हाथों को मिट्टी से मलकर धोवें व एक बार फिर जल ले जाने वाले पात्र मांज लें। उस के बाद फिर चार बार हाथ मांजकर फिर एक बार उस पात्र को मांज ले। इस प्रकार यह शुद्धि का क्रम गृहस्थ एवं विरक्त सभी साधकों के लिए अनिवार्य ही पालनीय है। इस प्रकार हस्तप्रक्षालन की यह शुद्धि करलेने के बाद साधक को चाहिए कि वह दन्तधावन करे।

दन्तधावन के लिये बबूल की दातुन, मौलसिरी की दातुन वह उपलब्ध न हो तो अमलतास व अम्बा की दातुन करे। साधक को चाहिए कि वह बबूल की या मौलसिरी की दातुन को अपने दांतों से चबाकर उसका ब्रुश बनाकर दोनों ओर दांतों पर घिसे एवं पानी से कुल्ला करके दांतों व दाढ़ों को धो डाले।

और दातुन,से जो ब्रुश बनाया है उसे दांत से काटकर फेंक डाले। उसके बाद दोबारा उस का ब्रुश बनाकर बाड़ व दांतों को घिसे। इसी प्रकार तीसरी बार फिर दांतों को चबावे एवं ब्रुश बना करके बाद दांतों की घिसाई करे फिर ब्रुश को दांतों से काट दे। एवं मुख को जल से धो डाले।

इस प्रकार प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह तीन बार दातुन का ब्रुश बनाकर दांतों को अवश्य ही अवश्य घिसे। तीन बार ब्रुश बनाने का नियम तो हर साधक को रखना रखना चाहिये। तीन बार के अतिरिक्त चार या छः बार भी ब्रुश बना दिया जावे तो वह उत्तम ही है। फिर दातुन को फाड़कर जिह्वा को साफ करना चाहिए क्योंकि रात्रि भर में सोने से जिह्वा पर मल जमा हो जाया करता है उसको दातुन को फाड़कर साफ कर मैल को उतार देना चाहिये इसी को दन्त धौति कहते हैं जो कि साधक के लिये आवश्यक पालनीय नियमों के अन्दर यह भी पालनीय नियम है जिसका पालन प्रत्येक साधक को करना चाहिए।

उसके बाद प्रत्येक साधक को ठण्डे जल से स्नान करना चाहिये। शरीर की आदत ठण्डे जल से स्नान करने की ही डालनी चाहिये। कदाचित् कोई ऐसा न करे तो साधारण उष्ण जल से भी स्नान किया जा सकता है।

उसके बाद खद्दर के खुरदरे अँगोछे से जो आमतौर पर खादी भण्डार से मिला करता है उससे दृढ़ता के साथ शरीर के सर्वांगों को पोंछ करके धुले हुए साफ वस्त्र धारण करना चाहिये। इतना कर लेने के बाद प्रत्येक गृहस्थ साधक को अपने कुटुम्ब के सभी सदस्यों सहित नैत्यिक व्यायाम योगासन करने का नियम रखना चाहिए।

योगासनों में 'जीवनतत्त्व साधन' जो कि सिद्धगुरु सवाई की अपनी देन है वह भी क्रियाएं अवश्य ही करनी चाहिए उनका क्रम प्रत्येक साधक की दिनचर्या में इस प्रकार रखना चाहिये।

सर्वोत्तम-२-२ बार स्कन्ध चालन पीछे की तरफ से आगे को १० मिनट और आगे की ओर पीछे की ओर १० मिनट, अर्थात् स्कन्ध चालन २० मिनट प्रत्येक बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को करना चाहिये। उसके बाद पग चालन १० मिनट, ५ मिनट के बाद दूसरा पैर बदलना चाहिये। उसके बाद नाभि चालन ३० मिनट, उसके बाद जानु प्रसार तीन-तीन बार दोनों ओर करके, बाल मचलन १ मिनट तक करना चाहिए उसके बाद बच्चे का ध्यान १ मिनट तक, तदुपरान्त नाड़ी संचालन २० मिनट तक करना चाहिये.

(शेष ३६ वें पृष्ठ पर)

मन्त्र-विवेक

ज्योतिषकलानिधि श्री शिवनाथ जी मेहरोत्रा

भगवान शंकर मन्त्र-शास्त्र के उपदेष्टा हैं। मन्त्र-शास्त्र का ज्ञान भारत की प्राचीन थाती है परन्तु कालक्रम के प्रभाव से मन्त्र-शास्त्र विषयक ग्रन्थ और ज्ञान धीरे-धीरे दुर्लभ होते चले गये। आज भारतीय विद्याओं के नाम पर चल रही संस्थायें तो बहुत सी हैं और बड़े बड़े मठ और संस्थान इन विद्याओं को आधार मान कर चल रहे हैं परन्तु मन्त्र-शास्त्र की प्रतिष्ठा करने की प्रवृत्ति या उत्साह कहीं नहीं दिखता। भगवान शंकर का स्पष्ट आदेश है—

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति,
योजकस्तत्र दुर्लभः,

प्रत्येक अक्षर के अपने पृथक-पृथक प्रभाव हैं। उनका कम्पन, स्वभाव, स्वरूप, वर्ण, राशि, तत्त्व आदि अनेक विषय हैं जो महत्त्व-पूर्ण हैं। परन्तु उन सबको एकत्र कर सरल भाषा में ग्रथित करना व उसे जनोपयोगी बनाने की ओर ध्यान देने की ओर प्रवृत्ति करने पर ही यह महत्कार्य सम्भव हो सकेगा। इस सम्बन्ध में विद्वज्जनों और सामर्थ्यवान जनों को भी ध्यान देना उचित है।

मन्त्रशास्त्र का प्रयोग केवल काम्य कर्मों में या मोक्षप्राप्ति के लिए ही विहित नहीं है। राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में भी उनका प्रयोग बताया गया है। ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि के प्रयोग जो मन्त्रशास्त्रों में वर्णित हुए हैं कालक्रम से उन में त्रुटि आ गयी हो सकती है। परन्तु व्याव-हारिक रूप में काम आने योग्य उनमें अब भी बहुत कुछ सम्भव लगता है, शत्रुविनाश के लिए तान्त्रिक लोग अब भी मारणप्रयोग करते हैं। ऐसे अनेक मामले पढ़ने-सुनने व देखने में आते हैं। मेरे ऊपर स्वयं एक व्यक्ति ने मारण प्रयोग किया था। मैंने स्वयं उसे सहन किया हुआ है। उक्त प्रयोग जिस दिन हुआ व जिस ढंग से उसने मुझे प्रभावित किया उसमें मानसिक के अतिरिक्त कई भौतिक लक्षण भी प्रकट हुए थे। मुझे मेरी संपत्ति से एक पाई भी न मिल सके ऐसा आकस्मित षड्यन्त्र जिन लोगों ने किया उन्होंने ही मुझे मार कर समाप्त करने की योजना के अंगरूप में यह प्रयोग किया था ऐसा अनुभव मुझे हुआ था। उस दिन मेरा

छोटा भाई मुझको छोड़ कर मथुरा के लिए जा रहा था और इसी कारण उससे मिलने मुझे डेरा भवन में जाना पड़ा था। वहां से वापस आने पर मेरे कुरते, धोती, गंजी आदि में खून सराबोर मिला। यह वही भौतिक सिद्धि है जिसे मैंने देखा। उसी रात्रि में स्वप्न में गुरुदेव श्री श्री योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज जी ने दर्शन दिया और अभय देते हुए कहा कि तुम्हें इसका कोई दुष्प्रभाव विशेष नहीं हो सकेगा। जागने के बाद स्वस्थ रहकर भी शरीर पीड़ा का प्रभाव तो रहा परन्तु कोई भारी हानि नहीं हुई। उस मारण पीड़ा का प्रभाव पूरे तौर पर उसी दिन हुआ जिस दिन स्वयं श्री गुरुदेव या काशी पधारे और उन्होंने मेरे सिर पर अपना आशीर्वाद हस्त फेरा।

यदि मन्त्रशास्त्र के इन प्रयोगों की ओर राष्ट्रीय स्तर पर अन्वेषण किये जायें तो यह विदित हो सकेगा कि परमाणुबम के इस युग में हम इनका प्रयोग किस प्रकार कर सकते हैं। भारत सरकार ने इस ओर यदि प्रवृत्ति नहीं की तो इस में दोष इस विद्या से सम्बन्धित आचार्यों पर आता है जो स्वयं इसके प्रतिष्ठित व प्रमाणित करने पर कभी प्रयत्नशील नहीं हुए। तान्त्रिकों में कुछ अर्थ सिद्धि के लिए वाममार्गीय तन्त्र प्रयोगों की प्रवृत्ति तो दिखाई पड़ती है परन्तु उस विशाल महत्व के कार्यों में प्रयुक्त करने में वे अपने आपको सम्भवतः असमर्थ समझते हैं। ऐसे ही एक तान्त्रिक ने एक बार मुझे डराया था कि यदि अमुक प्रयोग करेंगे, मुझे अमुक धन न दोगे तो तुम्हारे पुत्र का अशुभ होगा। इसका उत्तर मैंने उन्हें तत्काल दिया था कि यदि आप में कोई शक्ति है तो आप सिर्फ मेरे सिर में दर्द पैदा करके दिखा दीजिए। वास्तव में क्षुद्र कार्यों में क्षुद्र शक्तियों का प्रयोग करने वाले यह तान्त्रिक किसी के निर्बल क्षण को पकड़ कर ही उसे हानि पहुँचा सकते हैं। जहाँ 'इष्ट' है वहाँ अनिष्ट कभी नहीं होता। अतः इष्ट को बड़ी रहने वाले किसी साधक की रक्षा स्वयं इष्टदेव को करनी ही पड़ती है। वास्तव में इन क्षुद्र शक्तियों के प्रयोग के कारण ही मन्त्र व तन्त्रशास्त्र उपहास व अवहेलनाओं का पात्र बनता गया है। परन्तु इससे एक बात यह तो स्पष्ट होती ही है कि यह मन्त्र व तन्त्र शुद्ध हों या पवित्र—इन में भौतिक दृष्टि से न समझने योग्य अनेक शक्तियाँ निहित हैं। हम तो मन्त्रशास्त्र की उस अनोखी शक्ति का ही अपने हित में प्रयोग करना चाहिए जो हमारे समाज की भलाई में सहायक होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे इस तीन आयामों वाले विश्व में चतुर्थ आयाम का सहारा खोजने का काम मन्त्रशास्त्र ही करता है। अतः बहुत सी बातों

में इस शास्त्र का प्रयोग करना सम्भव है। एक तन्त्र ग्रन्थ में तो बड़ी ही अद्भुत बात कह दी है। वहाँ भगवान शंकर बताते हैं कि यदि तुम्हारे प्रारब्ध में भी कोई वस्तु नहीं है परन्तु तुम इस प्रकार से यन्त्र का निर्माण कर लो तो वह वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायगी। कहते हैं—

"अथ यन्त्रविधिं वक्ष्ये
सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
सिद्धस्य लेखनादेव
यन्त्रसिद्धिः प्रजायते।
न भावि यत्र कार्यं तु
सिद्ध्यत्यपि तदा भवेत्॥

इस सिद्ध यन्त्र प्रकरण में २८ यन्त्रों का उल्लेख किया गया है। भाषा इतनी कठिन संस्कृत है कि एक प्रसिद्ध तान्त्रिक विद्वान के समीप जो स्वयं एक विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा के प्राध्यापक रह चुके हैं (बाद में विभागाध्यक्ष भी रहे हैं) इस प्रकरण का अर्थ सही सही लगाने में कठिनाई की आत्मस्वीकृति मिली है। स्पष्ट ही इस प्रकार के ग्रन्थ भी दुर्लभ हो गये हैं और उनका अर्थ लगाकर उनके द्वारा प्राप्त लाभ भी कमाई करना तो दुष्कर है ही। यह सब काम सम्भव कर पाने के लिए ही समर्थ्रवान लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है।

मन्त्रों की विविध व्याख्याएँ जो यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं इन सब को एकत्र किया जाय तो निश्चय ही बहुत बड़ा काम होगा। अ आ इ ई क ख आदि विविध स्वरों व व्यञ्जनों के पृथक पृथक स्वरूप बताए गए हैं। एक एक अक्षर की साधना के समय उस उस स्वरूप का ध्यान किया जाता है। प्रत्येक अक्षर को कई विभिन्न ग्रन्थों में अलग अलग तत्त्वों में विभाजित किया गया है और तत्सम्बन्धी प्रयोजन उन ग्रन्थों में ही वर्णित किए गए हैं। उदाहरण के रूप में कुण्डलिनी शक्ति के प्रकरण में पचास अक्षरों की स्थिति जिस जिस चक्र में बताई गई है वहाँ वहाँ जिस तत्व की स्थिति है उस उस तत्व से उनका सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। इसका प्रयोग शक्ति उत्थान के निमित्त विहित है। मन्त्र महोदधि में विविध अक्षरों का तत्त्व विभाग इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है—

पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
उ	ऋ	इ	अ	ऌ
ऊ	ॠ	ई	आ	ॡ
ओ	औ	ए	ऐ	अं
ग	घ	ख	क	ङ
ज	झ	छ	च	ञ
ड	ढ	ठ	ट	ण
द	ध	थ	त	न
ब	भ	फ	प	म
ल	व	र	य	श
ळ	स	क्ष	ष	ह

यहाँ यह बताया गया है कि पृथ्वी आदि पाँचों तत्वों में परस्पर मैत्री शत्रुता उदासीनता आदि का ध्यान रखकर उक्त तत्व गत अक्षर मन्त्र का अपने ऊपर प्रभाव समझना चाहिए अर्थात् पृथ्वी तत्व का मित्र जल है। शत्रु तेज है। उदासीन वायु है। जल तत्व का मित्र पृथ्वी है। शत्रु तेज है। उदासीन वायु है। अग्नि अर्थात् तेज तत्व का मित्र वायु है, शत्रु जल है, उदासीन पृथ्वी तत्व है। वायु तत्व का मित्र अग्नि है, शत्रु पृथ्वी है, उदासीन जल तत्व है। आकाशतत्व सभी का मित्र है।

× × × ×

इन उपरोक्त बातों को समझ लेने मात्र से अनेक मन्त्रों का कुछ रहस्य पता चलता है। इस ज्ञान का प्रयोग हम और भी कई प्रकार से कर सकते हैं। इससे यह विदित होता है कि तत्व क्रम के प्रभाव से हमारा तत्व हमारे नामाक्षर के अनुसार कौन सा है और हमारे शत्रु तत्व एवं मित्र तत्व के अन्तर्गत जो वर्ण हैं उनसे प्रारम्भिक नामों को हम एक बार में जान सकते हैं। भला जल और अग्नि या पृथ्वी व अग्नि तत्व के लोग आपस में मैत्री कैसे कर सकते हैं?

× × × ×

इन अक्षरों का प्रयोग शान्ति कर्म में किस क्रम से होता है और विनाशादिक कर्मों में किस क्रम से होता है इसका उल्लेख भी मंत्रशास्त्रों ने विविध स्थलों पर किया हुआ है। इनका अध्ययन करने से इनके प्रयोग की वैज्ञानिक अथवा सामान्य जनोपयोगी सरल सम्पादनविधि का प्रतिपादन किया जा सकता है। अब शान्ति कर्म से सम्बन्धित इन अक्षरों के प्रयोग क्रम के सम्बन्ध में ध्यान दें। ज्योतिष शास्त्र का सर्वप्रधान चक्र सर्वतोभद्रचक्र है। अन्य सभी चक्रों का यह राजा है। जैसा इसका नाम है वैसा ही यह सब प्रकार से कल्याण प्रदान करने वाला चक्र है। प्रत्येक शुभकाम में सर्वतोभद्रचक्र निर्माण कर उसकी पूजा करने का विधान तो सभी कर्मकाण्डी पालन करते हैं परन्तु उसमें कौन से कोष्ठक में कौन सा अक्षर पूजित होता है इसके बारे में वे या तो जानते नहीं या जानना आवश्यक नहीं समझते। सर्वतोभद्र अंकित यह चक्र नीचे दिया जा रहा है।

शान्तिकर यन्त्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ
च	सं	ञ	ट	ठ	ह	ॠ
ड	भ	म	य	र	ड	ॡ
च	द	स	ह	ल	ण	ऌ
छ	फ	ष	श	व	त	ए
घ	ज	भ	प	द	थ	ऐ
ग	ख	क	अः	अं	औ	ओ

योगका तात्पर्य और चरित्र-निर्माण

महन्त श्री वैद्यनाथ जी महाराज

—✿ ✿ ✿—

योग के सामान्य धरातल पर उसकी साधना में षडङ्ग, अष्टाङ्ग, पञ्चदशाङ्ग आदि भेद निर्दिष्ट हैं। पर ये सभी स्तर मानव-जीवन और मानव के चरित्र-निर्माण के लिये प्रबल आधार हैं। इनमें यम-नियमके संयमपूर्वक सेवन से चरित्र उदात्त, पवित्र और प्रसादयुक्त होकर श्रेय की प्राप्ति में महनीय भूमिका की स्थापना करता है। योगरूप प्रधान चिद्घनशक्तिकेन्द्र, अलखनिरंजन परमात्मा के सत्-स्वरूपसे, निरंजनसे जीवनकी कल्याणमयी मङ्गलज्योति प्रवाहित होती रहती है और योगसाधनाएँ तथा यम-नियमादि योग के विभिन्न अङ्ग-उपाङ्ग सभी उस केन्द्रीय शक्ति-पुञ्जसे युक्त होकर मानव को कल्मषरहित पुण्य जीवनयापन तथा आत्मदर्शन और परमात्म-साक्षात्कारकी प्रेरणा देते रहते हैं। चरित्र-निर्माणकी दिशामें यही योगका परम तात्पर्य अथवा श्रेयस्कर मार्ग है। महायोगी गोरख-नाथजी ने एक सबदीमें चरित्र-निर्माण का सम्पूर्ण रहस्य योगसाधकके लिये भर दिया है। उनका यह अमृतवचन सम्पूर्ण मानवताके लिये पवित्र चरित्रकी प्रेरणा देता है। यह गोरख-बानी ७वीं सदी की है जो इस प्रकार है—

योगको सदैव आत्मसंयम करना चाहिये। योगका आधार ही नहीं, स्वरूप भी चित्तवृत्ति का निरोध है। संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणी के लिये यह उचित है कि वह आनन्दपूर्वक समस्त सुखों का भोग करता हुआ भी उनसे अनासक्त रहे। इससे उसकी आत्मस्वरूप में स्थिति निरन्तर बनी रहती है। उसे काम और क्रोधसे दूर रहना चाहिये; क्योंकि काम और क्रोधसे ही प्राणी अविद्या-अन्धकार और ममत्व के बन्धनमें आबद्ध होनेपर आत्मविस्मरणका शिकार हो जाता है। जीवन को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह जीवनकी सरलतासे, कर्तव्य-पालनसे, विमुख न हो, अनासक्त भावसे जीवनके समस्त ऐश्वर्य-वैभवका भोग करता हुआ भी आत्म-संयममें रहे और मन पर नियन्त्रण रखे। यही गीताकी भाषामें—'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्म बन्धनसे बच निकलनेका मार्ग और युक्ताहार-

निर्द्वन्द्वमय निर्द्वन्द्व संतुलित स्थितिरूप 'समत्व-योग' है। यह समत्वयोग ही चरित्र-निर्माण का केन्द्रीय प्रकाशपुञ्ज है। इससे सङ्ग अथवा आसक्तिका अपने-आप त्याग हो जाता है और जीवनमें निर्मलताका अमृत प्रवाहित होता है। यही योगस्थ कार्यसम्पादन है, जिससे चरित्र-निर्माणमें सहायता सुलभ होती है। भगवान् कृष्ण का कथन है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

× × ×

तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

(गीता २। ४८, ५०)

मनुष्य-जीवनकी सार्थकता यही है कि उसका उचित सदुपयोग हो, वह व्यर्थ और निष्फल न चला जाय। जन्मसे लेकर मरण-पर्यन्त समस्त संस्कारोंको शास्त्रसम्मत ढंगसे अपने जीवनमें प्रस्तुत करते हुए अनासक्त होकर जीवात्मा परमात्माके ध्यान और स्वरूप-चिन्तनमें तत्पर रहे। नाथ-पंथ के सिद्धामृत-मार्गमें योगसाधना-गत पवित्र चरित्र-निर्माणका यही अमृत फल है कि मनुष्य परमानन्द—परब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाय। हमारे मतमें पवित्र चरित्र के द्वारा नाथ-स्वरूप अथवा शिवस्वरूपकी प्राप्ति ही सहज है।

नाथयोग में चरित्र-निर्माणकी दिशा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, धृति, क्षमा, आर्जव, मिताहार और शौचस्वरूप दस यमोंका निर्देश है तथा इन यमोंके संवमन की दिशामें साधक अथवा मनुष्यमात्र के लिये तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त-वाक्यश्रवण, ह्री, मति, जप और हवन दस नियम आवश्यक हैं। नाथयोगके अप्रतिम साधनाग्रन्थ हठयोग प्रदीपिकामें यम-नियमकी चरित्र-निर्माणके लिये स्थापना की गयी है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश॥
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्।
नियमा दश सम्प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः॥

(हठयोगप्रदीपिका १। १७-१८)

ये दस यम-नियम योगके शेष छः उपाङ्गों के पोषक हैं। आसनसिद्ध योगी अथवा साधक अथवा मनुष्य शीत-उष्ण, क्षुत्पिपासा और आलस्य-तन्द्रा आदि द्वन्द्वोंपर विजय पा लेता है। श्वास-प्रश्वासकी गतियोंका विच्छेद ही प्राणायाम है। इसके द्वारा मनको स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है और शरीरमें चैतन्य का प्रवाह अनवरत होता रहता है। सतर्कता-पूर्वक मन और इन्द्रियोंको बाह्य-विषयों के संपर्कसे दूर रखकर आन्तरभागमें उन्हें प्रयुक्त

करना ही प्रत्याहार है। धारणा, ध्यान और समाधिको अनेकविध बाह्य-आन्तर विषयों में प्रयुक्त करके विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ और उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। किसी निश्चित वस्तु पर ध्यान को केन्द्रित करने की प्रक्रियाको 'धारणा' कहते हैं। जब चित्त सभी प्रकारकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंसे मुक्त हो जाता है, तब धारणा ध्यानकी स्थितिमें परिवर्तित हो जाती है। ध्यानकी प्रगाढ़ स्थिति ही समाधि है। निःसन्देह योगके इस साधना-मार्ग से चरित्र-निर्माणकी प्रक्रियाको सम्पूर्ण सिद्धि होती है।'

हमारे पुण्यश्लोक भारत-देशके मनीषियों, महर्षियों और सिद्धों तथा महायोगियोंने सारे विश्वके मानवोंको वेदविहित वर्णाश्रमसम्मत आचार-विचार की जीवन में उतार कर सार्वभौम श्रेयकी प्राप्तिकी सत्प्रेरणा प्रदान की है। गोरक्षमहायोगी गोरक्षनाथने अपने अनुभव सिद्ध 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' नामक योगशास्त्रमें कहा है—सदाचारत्वे ब्राह्मणास्तिष्ठन्ति, शौर्ये क्षत्रिय, व्यवसाये वैश्याः, सेवा भावे शूद्राश्च।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति ३ । ६)

इसका आशय यह है कि सदाचार, शौर्य, व्यवसाय और सेवाभाव ही समग्र मानव के लिये स्वधर्म हैं जिनके द्वारा जीवनकी उन्नति होती है, चरित्रका निर्माण और विकास होता है। ब्राह्मणके शूद्र अनुक्रममें किसी वर्ण की हीनता या विशेष प्रतिष्ठाका बोधक नहीं है, यह एक मानवीय क्रम है, जिसमें जो मनुष्य सदाचारी है, जो शौर्यसे जगता है, जो व्यवसायकर राष्ट्रकी समृद्धि बढ़ाता है और अपनी सेवा के द्वारा सामाजिक श्रेय का प्रतिपादन करता है, वही चरित्रवान् है। वही संस्कृत और शिष्ट है। मनुष्यमात्र में वर्गीय अथवा जातीय भेदभावकी स्थापना तो निरर्थक है, सार्थकता यह है, कि सभी मनुष्य एक-दूसरेसे आत्म सम्बन्धी हैं और सभी के हृदय में परमात्मा और उसकी ज्योति प्रकाशित है। वास्तवमें यही कर्मयोग है, जिसमें सत्यकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सब एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं और इनमें सत्य-प्राप्ति की प्रतिष्ठा है। महायोगी गोरखनाथ जी ने कहा है—

सत्यापेक्षमानं निरुपमनन्तं चाक्षरं ध्रुवम्।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद्धीरः सत्यवादी स कथ्यते॥

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति ६ । ६०)

जीवनके चरित्रमें सत्यही अमृत है। इस सत्य से ही चरित्र-निर्माण का तात्पर्य सम्पादित होता है।

यदिदं किं च तत्सत्यमित्याचक्षते।

(तैत्तिरीयोपनिषद् २ । ६ । १)

सत्य सर्वात्म है, परमात्मा अक्षय और सनातन है। यही चरित्र-निर्माणका सर्वोपरि शक्ति केन्द्र है, जिससे जीवात्मा अमृतत्व में प्रतिष्ठित होता है। सत्यप्राप्ति ही चरित्रकी गरिमा है।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज

दस-दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल

एक बार सद्गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्रीरामलालजी महाराज ऋषिकेश में विराजमान थे। किसी सांसारिक व्यक्ति ने आकर के उनके चरणारविन्दों में प्रश्न किया कि प्रभो! सुनने में आता है कि मनुष्य की कोई स्थिति इस प्रकार की आया करती है कि उस स्थिति में यदि वह एक-एक कदम आगे बढ़े तो उस को दस-दस हजार अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। वह स्थिति कौन सी है जिसको पाकर के मनुष्य इतने महान पुण्य का भागी बन जाता है।

उस समय श्री मुलखराज जी श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में बैठे थे। इनको ओर देख करके श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी--'बेटा ध्यान में देखकर बतलाओ कि किस स्थिति में जाकर मनुष्य एक-एक कदम बढ़ाने पर दस-दस हजार यज्ञों के फलों को पा जाता है।

श्री मुलखराज जी श्री कृपानिधानजी की आज्ञा को पाकर तत्काल ध्यान में बैठ गये। उन्होंने देखा एक बड़े दिव्य सुन्दर प्रदेश में एक दिव्य प्रकाशमीय सिंहासन है। उस सिंहासन पर परम सद्गुरु तत्व मूर्तिमान होकर विराजमान है। श्रीप्रभुजी का वह रूप अद्भुत व अलौकिक था परात्पर ब्रह्म-प्रकाश था। श्री मुलखराज जी महाराज ने ऐसे अचिन्त्य रूप को देखा। वेदों की ऋचायें जिसकी स्तुति गा रही थी, देव लोग पुष्प वर्षा रहे थे। ऐसे नित्य परात्पर शुद्ध स्वरूप को देख करके श्री मुलखराजजी तनमन से न्यौछावर हो गये और एक कदम बढ़ाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने लगे। श्री प्रभुजी ने अपना परम तेजोमय कर-कमल उठा करके उनको आशीर्वाद दिया। उस आशीर्वादके साथ यह मालूम पड़ता था कि बहुत बड़ी अखण्ड तेज राशि उनके शरीरमें प्रवेश कर रही है। इसी प्रकार दूसरा कदम बढ़ाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। पुनः इसी प्रकार श्री प्रभुजी ने अपना कर कमल बढ़ाकर आशीर्वाद दिया और इस बार भी आशीर्वाद के साथ ही तेजराशि पुनः उसी प्रकार उनके शरीर में प्रवेश कर गई। इसीप्रकार ज्यों-ज्यों कदम बढ़ाकरके मुलखराज जी साष्टांग प्रणाम करते थे त्यों-त्यों वे धारायें उनको प्राप्त होती रहीं। अन्त में वे परम सद्गुरु तत्व श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों

में लिपटते ही श्री मुलखराज जी अपनी नाम रूपी सत्ता को खो बैठे। वह वहाँ रह गये जहाँ जिनके चरणों पर उन्होंने अपने आपको न्योछावर किया था।

इस दिव्यानुभव को देखकर श्री मुलखराज जी ध्यान से उठ बैठे। पूछने पर अपने ध्यान का पूर्ण अनुभव प्रश्न करने वाले जिज्ञासु को सुना दिया और बतला दिया कि यही वह परम तत्व है जिसके ऊपर न्योछावर होने पर एक एक कदम बढ़ाने से दस-दस हजार अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है शास्त्र का कथन है—

'गुरु भक्ति सदा कुर्यात् ।
श्रेयसे भूयसे नरः' ॥

यदि मनुष्य परम कल्याण की चाह तो उसे गुरु भक्ति करनी चाहिये। परम कल्याण का स्रोत श्री गुरुदेव के चरण कमलों से बहता है। प्रश्न कर्ता जिज्ञासु को यथोचित उत्तर पाकर के परम सन्तोष हुआ और उसने मान लिया "नास्ति तत्वं गुरो परम्" अर्थात्—गुरुदेव से बढ़करके इस संसारमें और कोई तथ्य नहीं है।

❀ तृतीय नेत्रदान ❀

एकबार श्री मुलखराज जी की अत्यन्त विनय और नम्रता पर हर समय आह्लादित रहने वाले योग-योगेश्वर श्री मुलखराजजी को अपने पास बुलाया और इनके दोनों भ्रूओं के बीच के माँस को थोड़ा हाथ से खींच दिया। ऐसा करने पर आज्ञा प्रदान की कि बेटा तुम यहाँ बैठे रहो कुछ देर में तुम्हें यहाँ जलन मालुम पड़ेगी और प्रकाश मालुम पड़ेगा तब तुम हमें बतला देना। "इस तृतीय नेत्र के प्रकाश को श्री मुलखराज जी चलते-फिरते उठते-बैठते हर समय देखते रहा करते थे। दिन-प्रतिदिन इसका प्रकाश अति उज्जवल होता चला गया।"

❀ सिद्ध लोक दर्शन ❀

एक रोज श्री प्रभुजी ने आह्लादित मन से कहा—ऊपर आकाश की ओर तो देखो। ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया, थोड़ी ही देर में इस तृतीय नेत्र के प्रकाश में अनन्त लोक दिखलाई दिये। उसके बाद थोड़ी देर में दृष्टि सिद्धलोक को चली गई तो श्री मुलखराज जी ने अनन्त प्रकाशमय श्री सिद्ध लोक को देखा। उसमें कपिलादिक महासिद्ध दिव्य तेजोमय रूप से विराजमान थे। वहाँ पर तम का लवलेश भी नहीं था। इस अद्भुत दृश्य को देख करके श्री मुलखराज जी कृतार्थ हो गये।

यस्य कृपाप्रसाद् सुविशिष्ट ।
प्राप्तः स्तृतीय नेत्रेण समेवृत्तीन ॥
महाप्रकाशेन सुसिद्ध लोक ।
मोक्षेन प्राप्तं मुलखराजाग्रतये ॥

अर्थात्—जिनकी कृपा के एकांश को पाकर के महाप्रकाशमय तृतीय नेत्र को पा लिया और उस तीसरे नेत्र को पाकर के परमप्रकाशमय उस सिद्धलोक को क्षणभर में देख लिया। ऐसे योग-योगेश्वर परम् प्रभु रामलाल जी हम सबके आश्रय स्थान हैं। उनकी चरण शरण से ही हम सब भी कृतार्थ होंगे। श्रीमुलखराज का हृदय परम सन्तों जैसा हृदय था। वह बड़ी जल्दी दयाल हो जाया करते थे। एक-बार उनको ध्यानास्थ देखकर गरीब ब्राह्मण ने प्रार्थना की कि महाराज मैं लगभग २६ वर्ष से ध्यान का अभ्यास कर रहा हूँ किन्तु मुझे कोई अनुभूति नहीं होती। श्री मुलखराज जी का हृदय उस ब्राह्मण की सत्यवादिता पर बहुत प्रसन्न हो उठा और उसे श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये और उसकी यथार्थ स्थिति बतला दी। श्री परम कृपासागर प्रभुजी ने उसको पूर्ण प्रसाद दिया उसके फलस्वरूप उसी समय से उनको दिव्य दर्शन प्रारम्भ हो गये। वह दीन ब्राह्मण कृत-कृत्य हो गया।

मलावा देवी के लिंग शरीर का दर्शन

मलावा देवी अमृतसर में एक भक्तिमती स्त्री थी। श्री प्रभु जी के चरणारविन्द के दर्शनार्थ आने का उसका नैत्तिक नियम था। श्री प्रभुजी ने उसको कई बार योगाभ्यास के लिए आदेश दिया किन्तु वह कुछ न कर पाई और अचानक छत से गिरकर के उसका देहावसान हो गया। श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में देखा, मलावा देवी अपने कारण शरीर से श्री प्रभुजी के पास बैठी हुई है, बड़ी उदास मालूम पड़ती है। श्रीमुलखराज जी ने पूछा प्रभो! यह मलावा आज आपके पास उदास सी क्यों बैठी मालूम पड़ती है! श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया—बेटा इसको हमने भजन ध्यान के लिए काफी उपदेश दिया, किन्तु इसने कुछ नहीं किया। आज अकस्मात् छत से गिरकर इसका शरीर छूट गया है और यह हमारे पास आई हुई है।

हम अब यह सोच रहे हैं कि इसे अब कहां भेजें। श्री मुलखराजजी ने प्रार्थना की कि—हे करुणासागर जब आपने इसे अपना ही लिया है तो उदार परम अनुग्रह करके इसको अपना दिव्य धाम दीजिये। आपके चरणों में आकर फिर भी यदि इसकी सद्गति न हुई तो भला प्राणी और कहां जा पायेंगे। श्री मुलखराजजी की विनय को सुनकर श्री प्रभुजी ने मुस्कराते हुए आकाश की ओर देखा। श्री प्रभुजी के देखते ही झिलमिल करता हुआ एक दिव्य सिंहासन आया जिसको दिव्य चतुर्भुज पुरुष सँभाले हुए आ रहे थे। मलावा को श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि—"बेटी मेरे पास क्यों बैठी है जा इसमें बैठ जा।"

श्रीप्रभुजी के कृपामय आशीर्वाद को पाकर के मलावा चटपट भागकर उस सिंहासन पर

में जाकर बैठ गयी। उस सिंहासन में बैठते ही वह दिव्याम्बरधरा चतुर्भुजा देवी बन गई। चतुर्भुजा होतेही उसने श्रीप्रभुजी को बारम्बार प्रणाम किया और सिंहासन के रक्षक चतुर्भुज दूतों ने भी श्री प्रभुजी को प्रणाम किया। श्री प्रभुजी से आज्ञा पाते ही वह दिव्य सिंहासन तत्काल देवलोकको चला गया। श्रीप्रभुजी के परम अनुग्रह को पाकर के मनाया देवी परम् धाम को पा गई। यह ज्यों की त्यों सारी घटना श्री मुलखराज जी महाराज ने तत्काल ध्यान में देखी। ध्यान से उठने के बाद पता चलाया तो मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले ही मनाया मकान से गिरकर शरीर छोड़ चुकी थी।

वैकुण्ठपति भगवान विष्णु के दिव्य दर्शन

एक बार श्री मुलखराज जी महाराज के मन में श्री प्रभुजी की कृपा के अमूल्य धन को पाकर के यह धारणा बनी कि अहर्निश अपने अभ्यास को अधिकाधिक बढ़ावें कोई एक क्षण भी खाली नहीं रहना चाहिये। उनको ख्याल आया कि,

कबिरा, स्वांसा खाली जात है,
तीन लोक का मोल"।

इसी बात को विचार करके जो सहज समाधि उनकी बनी रहती थी उसके बने रहने पर भी बाकायदा रात्रि को भी अपना अभ्यास इकट्ठा के साथ करना आरम्भ कर दिया। मनुष्य के मन में आरब्धवश शिष्टाशिष्ट उत्थान पतन चलता ही रहा करता है "समाधिस्थ होने पर भी"

"वृत्ति सारूप्य मितरत्र"

"नियम चालू ही रहता है। जब तक उत्कृष्ट सत्व उज्वल नहीं हो जाता है तब तक रज और तम की वृत्तियाँ भी यदा कदा अपना प्रभाव डालती रहती है।

एक बार रात्रि के अभ्यास में तमोवृत्ति निद्राने अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। वह हर बार सचेत होकर बैठते थे किन्तु उस दिन निद्रा उनको बार-बार विचलित कर देती थी और यथार्थ स्थिति को आने नहीं देती थी। इस प्रकार के आलस्यपन को अपनी बहुत बड़ी हानि समझ करके श्रीमुलखराजजी महाराज ने एक दीवार के पास बैठ करके अपनी चोटी को खूंटी से बांध दिया और फिर भी निद्रा आई तो उन्होंने जोर का झटका लगाया।

इसके फलस्वरूप कल्याणघन के मन में महान् करुणा उपजी और उन्होंने देखा कि आकाश से एक महान् प्रकाश नीचे आ रहा है। और उसकी एक तेजधारा इनके सिरपर पड़ी। थोड़ी ही देर के बाद ऊपर को दृष्टि उठाई तो देखा कि वैकुण्ठपति भगवान विष्णु स्वयं दिव्य

चतुर्भुज स्वरूप से नीचे की ओर आ रहे हैं और अपने शंख से इनके सिर पर तेज की धारा फेंक रहे हैं साथ ही बैकुण्ठ लोक भी दीख रहा है। ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने भगवान् विष्णु के द्वारा इस तेजमय प्रकाश को प्राप्त किया तो वह पूर्ववत् भगवान् के चतुर्भुज स्वरूप में लीन होकर स्वयं भी चतुर्भुज होकर बैठ गये। जिस समय थोड़ी सी भी इनका तपता भंग होती थी तो खुली ही आँखों उत्तमोत्तम दर्शन सामने आते थे। जिस समय ये प्रातःकाल ध्यान से उठे और श्रीप्रभु जी के दर्शनार्थ कटरा भाई सन्तसिंह हो गये तो श्री प्रभुजी ने बड़े प्यार से इनको कण्ठ से चिपका लिया और कहा बेटा तुमने अपना चोटों को क्यों इस प्रकार बांध लिया। क्या वह शरीर तुम्हारा है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था। श्री प्रभुजी के इतना कहने पर श्री मुलखराज जी ने देखा कि स्वयं श्रीप्रभुजी की चोटी के बाल खिंचे हुए हैं और टूटे हुए हैं। श्री प्रभुजी की इस कृपा की महानता को जानकर उस दिन से श्री मुलखराज जी और भी ज्यादा सचेत रहने लगे। श्री मुलखराज जी इस स्थिति में जहाँ लीनता रहती थी वहाँ ईशाद्या सकला देवा दृश्यं ते परमात्मनि।"

अर्थात्

ईश आदि सभी देव उस परम प्रकाश में दिखलाई देते हैं। इस नियम के अनुसार श्री मुलखराज जी की इस स्थिति के अन्दर रहने वाले सभी सिद्ध योगिराज व अन्यान्य महात्माओं के भी समय-समय पर दर्शन होते रहते थे और वह सभी लोग प्रसन्न मुद्रा में धन्य-धन्य कहते हुए दृष्टिगत होते थे। आनन्दकन्द अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य रासलीला और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के स्थूल दर्शन भी इनको प्राप्त हुये। किन्तु इनका मन सद्गुरुदेव श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में ही विलीन रहता था अतः माम रूप से उन्हीं के चेतन स्वरूप में समाविस्थ रहा करते थे।

❀ ब्रह्मपुरी दर्शन ❀

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभुजी श्रीमुलखराज जी को इसी तुरीय स्थिति में अपने साथ ऋषिकेश ले गये वहां काली कमलीवाले क्षेत्रमें कई दिन तक निवास किया। ऋषिकेश से लगभग—६, ७ मील ऊपर ब्रह्मपुरी का जंगल है। वन को जाते हुए और वन से लौटते हुए श्री प्रभुजी ने कुछ समय वहां निवास किया था। अपने आपको ऋषिकेश आया देखकर के श्री मुलखराज जी के मन में यह धारणा बनी कि जब ऋषिकेश आये हुए हैं, जिस पवित्र वन में श्री प्रभुजी ने निवास किया उसके दर्शन कर लें और अवसर पाकर यह प्रार्थना श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में की। श्री मुलखराज जी की हार्दिक अभिलाषा को देख करके श्री प्रभुजी उनको ब्रह्मपुरी ले गये

थ वहां जाकर ब्रह्मधारा के निकट पहाड़ में वह गुफा थी, जिसमें श्री प्रभुजी ने वन जाते हुए और वन से आते हुए हरिद्वार कुम्भ से पहले निवास किया था।

ब्रह्मधारा के दक्षिण भाग में एक सुन्दर वाटिका थी जिसमें केले के वृक्ष अभी तक बहुत काफी विद्यमान है और कुछ वन के वृक्ष लगे हुये हैं। साधुओं ने कुछ और भी पौधे लगा लिये हैं। इसी वाटिका में वनके निवास काल में श्री प्रभुजी निवास किया करते थे। यहां पर जो केले लगे हुए हैं इनका रोपा-रोपण पहले-पहले श्री प्रभुजी ने ही किया था। श्री प्रभुजी यह बढ़िया केले कहीं से लाये थे और अपने हाथों यहां लगा दिये थे। आज-कल यह केले वहां पर काफी मात्रा में लगे हुए हैं। महात्माओं ने कुछ पर्णकुटारें भी यहां आज कल बना ली हैं। उत्तराखण्ड से आने वाली। श्रीगंगाजी पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर अपने प्रवाहको बहाती हुई श्रीप्रभुजी की गुफा के पास से ऋषीकेश की ओर निकल गई है और उत्तर की ओर से आने वाली ब्रह्मधारा, जिसको स्वयं श्री प्रभुजी ही इधर की ओर निकाल कर लाये थे वह श्री प्रभुजी की गुफा के पास होती हुई गंगा जी में मिल गई है।

ब्रह्मपुरी का यह निर्मल दृश्य देखते ही बनता है। ब्रह्मधारा के बीच में पत्थरों पर चुनाव एक जगह पर ऐसे प्रकार का हो गया है कि उसको श्री प्रभुजी अपने मुखारविन्द से अपना कटोरा बतलाया करते थे। वहां बैठकर श्री मुलखराज जी ने जलपान करने की इच्छा प्रकट की तो श्री प्रभुजी ने कुछ जंगली पत्तियां श्री मुलखराज जी को दीं और उनको जीभ पर रखकर जल पीने की आज्ञा दी तो वह जल ऐसा मीठा लगा मानो वह कोई बहुत मीठा शर्बत पी रहे हैं जिसमें दिव्य सुगन्ध भी मिली हुई है।

यह जलपान कर लेने के बाद श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को ब्रह्मधारा से ऊपर कुछ दूरी पर जंगल में ले गये। वहां से कन्द खोद-कर मंगवाया। और श्री मुलखराज जी को खाने की आज्ञा दी। श्री प्रभुजी से आज्ञा पाकर के जिस समय उस कन्द को खाया तो उसका स्वाद बहुत ही मधुर था। उस कन्द के खाने पर इनको अनुभव हुआ कि मानो कोई बहुत स्वादिष्ट पक्वान्न खाया है। श्री प्रभुजी ने कहा कि बेटा इन वनों में साधुओं की यही मिठाइयां हैं। जिस समय श्री मुलखराज जी कन्द को खोद रहे थे उसी समय पत्तों की आहट सुन करके एक चीता कहीं से निकल आया। चीते को देखकर के श्रीप्रभुजी ने कहा कि बेटा देखो यह क्या आ रहा है। श्रीमुलख-राज जी ने उस चीते को हिंसक जन्तु न समझकर अपने ही आत्मा की तरह प्यार से

देखा उसकी ओर आगे बढ़े तो वह पत्थर भाग गया।

इस प्रकार से ब्रह्मपुरी के जंगल का चारों ओर का दृश्य दिखला करके श्री मुलखराज जी को श्री प्रभुजी अपने साथ ऋषीकेश लौटा लाये। उन दिनों ऋषीकेश में रेल्वे स्टेशन बनने वाला था। श्री प्रभुजी नित्य ही कहीं न कहीं भ्रमण करने जाया करते थे और श्री मुलखराज जी को भी साथ ले जाया करते थे। एक रोज स्टेशन बनने की जगह को देखने को गये, वहाँ पर बहुत सुन्दर-सुन्दर मृग चर रहे थे, जिस समय यह दृश्य देख ही रहे थे कि देखते ही देखते एक चीता निकला और एक मृग के बच्चे को उठाकर ले गया। इस घटना को देख करके श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को समझाया कि—बेटा इस संसार में जीव जीव का आहार है।

प्राणी मात्र काल के गाल में है। बुद्धिमान मनुष्य वही है जो इस मनुष्य लोक में जन्म पाकर अपने आपको काल चक्र से बचा ले। और जन्म-मरण से छूट करके अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर ले। इस मनुष्य जन्म का यही परम पुरुषार्थ है। इस प्रकार से ऋषीकेश में रह कर के श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को अनेक आकृति के दृश्य दिखला कर शिक्षा देते रहे और उनके अभ्यास व वैराग्य को दृढ़ बनाते रहे। स्वयं सतत भ्रमण के लिये ले जाया करते थे और रात्रि को बस्ती में लौट आया करते थे।

श्री प्रभुजी काली कमली वाले के क्षेत्र में ठहरे हुए थे। एक दिन वहाँ पर कोई भंडारा था। उस भंडारे में एक उग्र स्वभाव वाले महात्मा बैठ गये जो अक्सर अपने क्रोधवश होकर भंडारों में विघ्न बाधायें पैदा किया करते थे। जिस समय श्री प्रभुजी उस साधु की तरफ बार-बार देख रहे थे तो श्री मुलखराज जी ने पूछा प्रभो! क्या कारण है जो आप इस महात्मा की ओर देख रहे हो? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया बेटा यह महात्मा बहुत उग्र स्वभाव का है अक्सर भंडारों में बाधा डाल दिया करता है। हम इसकी ओर इस लिए देख रहे हैं कि यहाँ पर इस प्रकार की कोई अशुभता न करे। उस महात्मा ने भी श्री प्रभुजी की दृष्टि को देख लिया था इस लिए वह चुपचाप भोजन करके जल्दी और साधुओं से पहले ही वहाँ से उठ कर चला गया।

इस प्रकार से ऋषीकेश व हरिद्वार आदि का भ्रमण करा के कुछ समय के बाद श्री प्रभुजी पुनः श्री मुलखराज जी को साथ लेकर अमृतसर आ गये। वहाँ पर पूर्ववत् आसना देवरिया सत्संग का कार्यक्रम अपनी विधि से चलने लगा।

1

जल में दिव्य गुणों का प्रकाश—

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभुजी सुन्धारा वाले कुँए पर विराजमान थे। सत्संग वार्ता चल रहा था। श्री प्रभुजी को कुछ प्यास लगी और उन्होंने श्री सुलखराज जी को कुँए से जल लाने की आज्ञा प्रदान की। आज्ञा पाकर श्री सुलखराज जी जल लेने चल दिये तो उनके मन में बागमती गंगा के जल की स्मृति जग उठी। वह मन में विचारने लगे कि श्री प्रभुजी बागमती के जल की बहुत प्रशंसा किया करते हैं सो आज कहीं से उसी प्रकार का जल उपलब्ध हो तो मैं ले जाकर श्री प्रभुजी को पिलाऊँ। यह सोचते-सोचते ही श्री सुलखराज जी एक कुँए पर पहुँचे। कुँए पर पहुँच करके ज्यों ही उन्होंने कुँए की ओर दृष्टि डाली तो कुँए में बहते हुए जल की एक पवित्र धारा दिखलाई दी। श्री सुलखराज जी ने उसी धारा से बड़ी जल्दी जल भर लिया और श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये।

पास में बैठे हुए और सत्संगियों ने व श्री प्रभुजी ने जलपान किया तो वो वह जल बहुत ही ठंडा और मीठा लगा। मुक्त कंठ से सभी लोग प्रशंसा करने लगे और जल के इतना मधुर होने का कारण श्री प्रभुजी से ही पूछा। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जिस समय यह सुलखराज जल लेने गया था इसके मन में उस समय बागमती जल की धारणा थी सो इसके एकाग्र मन के संकल्प से ही इस जल में इन गुणों का प्रकाश हुआ है।

— कमला

❀ सरल विश्वास ❀

सरल विश्वास और निष्कपटता रहने से भगवान का लाभ होता है। एक व्यक्ति की किसी साधु से भेंट हुई। उसने साधु से उपदेश देने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। साधु ने कहा, "भगवान से ही प्रेम करो।" तब उस व्यक्ति ने कहा, "भगवान को न तो मैंने कभी देखा है और न उनके विषय में कुछ जानता ही हूँ, फिर उनसे कैसे प्रेम करूँ?" साधु ने पूछा "अच्छा, तुम्हारा किससे प्रेम है?" उसने कहा, 'इस संसार में मेरा कोई नहीं है, केवल एक भेड़ा है, उसी को मैं प्यार करता हूँ।" साधु बोले, "उस भेड़े के भीतर ही नारायण विद्यमान है, यह जानकर उसी की जी लगाकर सेवा करना और उसी को हृदय से प्रेम करना।" इतना कहकर साधु चले गये। उस आदमी ने भी, उस भेड़े में नारायण है, यह विश्वास कर तन-मन से उसकी सेवा करना शुरू कर दिया। बहुत दिनों बाद उस रास्ते से लौटते समय साधु ने उस आदमी को खोजकर उससे पूछा, "क्यों जी अब कैसे हो?" उस आदमी ने प्रणाम करके कहा गुरुदेव, आपकी कृपा से मैं अब अच्छा हूँ, आपने जो कहा था, उसके अनुसार भावना रखने से मेरा बहुत कल्याण हुआ है। मैं भेड़े के भीतर कभी-कभी एक अपूर्व मूर्ति देखता हूँ—उनके चार हाथ हैं—उनका दर्शन कर मैं परमानन्द में डूबा हुआ हूँ।" रामकृष्णपरमहंस

महाप्रभु रामलाल की जै

श्री रामसजीवन सिंह

योगेश्वर आधार विश्व के, महिमा अगम न जाय बखानी ।
पार न पावत देव थके सब, शेष शारदा मुनि अरु ज्ञानी ॥
शक्तिपात करके कितनों को, सहज समाधी भी दे डाली ।
मेरे सद्गुरुदेव आपकी, कहते रहते कथा निराली ॥
पड़ा तिहारे द्वार मोहि पर दया-दृष्टि कीजै ।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै ॥

सिद्ध-गुफा की रज को खाकर, रोगी रोग मुक्त हो जाते ।
श्रद्धा हुई आप पर जिसकी, उसके भव बंधन कट जाते ॥
मंगामल की ज्ञान बढ़ाई, तारी रामरती सी नारी ।
सिद्धों के हो सिद्ध महाप्रभु, जग में ना कोई अनुहारी ॥
जन्म अनेक पड़ा भव सागर अब उबार लीजै ।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै ॥

दीन युवक उपराम बनाया, तुरत भैरवी चक्र विनाशा ।
सभी आगमों का निचोड़ रस, साधन 'जीवन तत्व' प्रकाशा ॥
श्यामाचरण लाहड़ी जी को, पूर्व जन्म का ज्ञान कराया ।
सुलभ सरलतम सिद्धयोग का, इस कलयुग में मार्ग दिखाया ॥
कोटि कोटि जनम का मेरा महापाप सब छीजै ।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै ।

पापी यदि आ गया शरण में, भर दीन्ही उसकी भी झोली ।
योगी हुआ आपके द्वारा, योग सुधा जिसने भी पी ली ।
अल्प बुद्धि मैं दीन-दुःखी हूँ, अवगुण में सर्वोत्तम नामी ।
क्या मांगू कुछ सोच न पाता, आप स्वयं हैं अन्तर्यामी ॥
जो सर्वोत्तम समझें मम हित, वही दान दीजै ।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै ॥

पता—१८० ऊँचा मण्डी, इलाहाबाद-३

आचार्याभिमान योग

आचार्य श्री चन्द्रदास शर्मा

संसार के जितने भी मत-मतान्तर हैं उनका मूल स्रोत योग है। अपनी-अपनी आस्था, साधना पद्धति तथा बुद्धि की पहुँच के आधार पर विभिन्न धर्मावलम्बियों ने योग की विभिन्न कलाओं के आधार पर उसके भिन्न-भिन्न नाम तथा रूप प्रकट किये हैं। वस्तुतः सभी प्रकार के योग चाहे बौद्धों का जैनों का, यहूदियों का या ईसाइयों का सम्यक् योग, निर्जरयोग, आत्मयोग अथवा शरणागत योग क्यों न हो—अष्टाङ्ग योग के ही अंश मात्र हैं। जैसे एक ही जल बुदबुद, तरंग, बिन्दु, धारा अथवा हिम खण्ड बन जाता है वैसे ही योग—स्थान तथा कालगति व सामर्थ्य भेद से नाना नाम वाला हो गया है। जैन धर्म ने अष्टांगयोग में से एक अहिंसा को लेकर ही अपने धर्म का विशाल भवन खड़ा कर लिया। इसी प्रकार स्पर्श योग, स्पन्द योग परामर्श योग, प्रणिधान योग, अनुभूति योग, अविकल्प योग, आचार्य अभिमान योग आदि नाना प्रकार के योग विभिन्न उपासना पद्धतियों में दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री वैष्णवों में रामानुज सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में भक्ति को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। भक्ति अनुराग पूर्ण स्मरण चिन्तन तथा आत्मसमर्पण के द्योतन के लिए एक प्रयत्न है। सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में प्रगाढ़ अनुराग की आतुरता को ईश्वर अनुग्रह का उपाय बताया है। जब साधक ऐश्वर्य, वीर्य, आनन्द ज्ञान तथा शक्ति आदि से षड्विध ऐश्वर्य समन्वित ईश्वर के सम्मुख अपने आपको सर्वात्मना निछावर कर यह कहता है– हे प्रभो! मैं तेरा हूँ तो ईश्वर तुरन्त विघ्न-बाधाओं को दूर कर

(पिछले पृष्ठ का शेष)

इस मन्त्र को लिख कर तीन दिनों तक इसका पूजन करना चाहिए। चण्डीपाठ करना चाहिए। ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। भूमि पर सोना चाहिए। इससे समस्त उपद्रव कलह, कृत्या आदि का शमन होता है। इसे धारणा कहते हैं। पूजन एवं धारणा से मन्त्रार्थी की अभीष्ट सिद्धि होती है।

साधक को अभय प्रदान कर देता है। जहाँ सूर्य हो वहाँ अन्धकार भला कैसे रह सकता है? राजा का पुत्र यदि दीन-हीन दशा में रहे तो राजा को खुद अपमान तथा दुःख होगा। जब तक वह अपने को राज पुत्र घोषित नहीं करता तब तक कष्ट में पड़ा रहता है। वैसे ही वह चिल्ला चिल्लाकर अपना सम्बन्ध प्रकट करने लगता है राजा के चर राजा को सूचना देते हैं। राजा को अपने पुत्र के प्रति दया उमड़ आती है। वह अपने राज-ऐश्वर्य से पुत्र को सम्पन्न कर तत्क्षण दारिद्र दुःख को दूर कर देता है। गीता में सिद्धों के नाथ श्रीकृष्ण ईश्वर का स्वभाव बतलाते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय
        तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो
        ददामि एतद् व्रतं मम॥

जिसका पिता सत् चित् तथा आनन्द की राशि हो उसका पुत्र (जीव) दुःख तथा अज्ञान में क्यों रहे। पिता की सम्पत्ति का पुत्र उत्तराधिकारी होता है। सूरदासजी ईश्वर से उलाहना भरी प्रार्थना करते हैं—

साँई! तेरा होके क्यों दुःख पाऊँ मैं।

"बाबा तुलसीदास विभीषण की शरणागति-प्रसंग में भगवान के स्वभाव का उल्लेख करते हैं—

मम पन शरणागत भय हारी।

जीव का ईश्वर के साथ नित्य सम्बन्ध है तथापि माया और अविद्या के कारण यह सम्बन्ध खटाई में पड़ गया है। भक्ति योग के द्वारा ईश्वर की सन्निधि होती है योग दर्शन में 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' सूत्र में ईश्वर प्रणिधान ही भक्ति कहलाती है। ध्यान और जप पूर्वक प्रपत्ति (आत्मसमर्पण) भक्ति का विशेष प्रकार है जिसके द्वारा ईश्वर साधक के अभिमुख होकर उस पर अनुग्रह करता है और उसके अभीष्ट संकल्प को पूर्ण कर देता है तथा समाधि योग दे देता है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय में भक्तियोग की प्राप्ति के सात सोपानों से मानी गई है। वे सात सोपान हैं—

(१) विवेक— अनुचित एवं शुद्ध पवित्र भोजन द्वारा शरीर तथा मन की शुद्धि. (२) विमोक— कामनाओं में अनासक्ति. (३) अभ्यास— ध्यान (४) क्रिया—अपनी सामर्थ्यानुसार पंचमहायज्ञों तथा षोडश संस्कारों का सम्पादन (५) सत्य, ऋजुता, दया, दान, और अहिंसा का पालन (६) अनवसाद (७) अनुद्धर्ष— अतिसन्तोष का अभाव। इन सोपानों से ईश्वर की भक्ति मिलती है। भक्ति की पराकाष्ठा प्रपत्ति अर्थात् आत्मसमर्पण में जाकर होती है। प्रपत्ति का मार्ग निर्विघ्न मार्ग है। अपने को पूर्णरूपेण परमगुरु ईश्वर के अधीन

छोड़ देना आत्मनिवेदन कहलाता है।

जाहि विधि राखै राम
जाहि विधि रहिए।

शरणागति कहलाता है। प्रपत्ति के अन्दर ६ अंग हैं—(१) आनुकूल्यस्य संकल्पः अर्थात् ईश्वर मेरी सहायता करेंगे इस प्रकार का दृढ़ विचार।

(२) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् अर्थात् प्रतिकूलता का निवारण।

(३) रक्षिष्यतीति विश्वासो अर्थात् भगवान अवश्य मेरी रक्षा करेंगे—यह विश्वास।

'बिनु बिश्वास भगति नहिं
तेहि बिनु द्रवहि न राम।'

बिना विश्वास के भक्ति नहीं हो सकती और बिना भक्ति के ईश्वर-कृपा प्राप्त नहीं होगी।

'जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़।
जिमि खगेस जल की चिकनाई॥

ईश्वर के ऐश्वर्य, करुणा तथा लीला का बोध सद्गुरु कृपा तथा शास्त्र सन्त तथा विद्वानों का सेवन करने से होता है। श्रुति भगवती कहती है कि ज्ञानपूर्ण गुरुदेव के सान्निध्य में निष्ठा और श्रद्धा पूर्वक की गई उपासना शक्तिशाली होती है—

'यदेव विद्यया करोति श्रद्धया उपनिषदा, तदेव वीर्यवत्तरं भवति।'

प्रपत्ति का चतुर्थ अंग है—गोप्तृत्ववरणम् अर्थात् भगवान को रक्षक समझकर उनको उसी तरह वरण कर लेना जिस प्रकार मतवाली मीरा ने गोविन्द को वरण किया था

माई री मैंने लीनो गोविन्दा मोल।

अथवा गजेन्द्र की तरह व्याकुल होकर रक्षार्थ उनकी स्तुति करना।

(५) आत्मनिक्षेप अर्थात् मन वाणी कर्म सभी कुछ ईश्वर के समर्पित करना—

मेरा मुझ में कुछ नहीं
जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते
क्या लागे मोर॥

यह भावना आत्मनिक्षेप की भावना है।

(६) कार्पण्य षड्विधा शरणागतिः—निःसहाय तथा करुणा का भाव जो देखने में कायरता सा लगता है पर वस्तुतः यह सतोगुण की उत्कृष्ट अवस्था है जिसमें वह प्रत्यक्ष विगलित होकर 'त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो' का भाव प्रबल हो जाता है। इस प्रकार ये छः सोपान हैं।

भक्ति के उदय होने पर शनैः-शनैः

अनन्यता का भाव दृढ़ हो जाता है। अनन्यता आ जाने का तात्पर्य है जिसकी इष्ट के प्राणों में प्राण, मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, चित्त में चित्त इस तरह मिल जाय कि अपना कुछ रह ही न जाय। ऐसी स्थिति होने पर ईश्वर भक्त के हाथ बिक जाते हैं। भक्त का कष्ट उनका कष्ट हो जाता है। भक्त की इच्छा की उन्हें सबसे अधिक चिन्ता होती है। पहले भक्त भगवान के पीछे पीछे चल रहा था। कभी वे मिल जाते थे कभी छिप जाते थे। प्रार्थना स्तुति जप ध्यान तथा अनुष्ठानों से भक्त भगवान को प्रसन्न कर अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते था किन्तु अनन्य भाव आ जाने पर स्थिति बदल जाती है। कबीर कहते हैं कि—

'पाछे पाछे हरि फिरे,
कहत कबीर कबीर।'

हरि भक्ति के पीछे-पीछे ही नहीं फिरते बल्कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा प्राप्त की हुई वस्तुओं का रक्षण प्रभु स्वयं करते हैं। जैसे नरसी मेहता तथा धना आदि के कार्य प्रभु ने स्वयं किये थे। सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण गीता में घोषणा करते हैं—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम्॥'
९/२२

जो ईश्वर के साथ पूरी तरह उसी तरह जुड़ जाते हैं जिसप्रकार गर्भस्थ बालक नाल द्वारा माता से जुड़ जाता है उनका चिन्तन और उन की सेवा एकनिष्ठ अन्तःकरण की सेवा हो जाती है। उस एकाग्र अवस्था में साधक के अन्दर यदि कोई कामना आ जाती है तो उस की पूर्ति के लिए ईश्वर को ही कोई न कोई प्रयत्न करना पड़ता है। जैसे बिना पंख वाले पक्षी शावकों की जीवन रक्षा के लिए उसकी माता चिड़िया प्रयत्न करती है। जिनका ध्यान 'उठत बैठत सोवत जागत पल न एक बिसरात' की स्थिति में हर समय रहता है उनकी इच्छाओं की पूर्ति प्रभु स्वयं करते हैं और प्राप्त वस्तु का संरक्षण भी प्रभुजी ही करते हैं। सभी प्रकार के योगियों में कौन सर्वोत्तम है, यह प्रश्न अर्जुन ने अपने आराध्य सिद्धों के स्वामी श्रीकृष्ण से पूछा। भगवान ने संक्षेप में उत्तर दिया कि जिन योगियों का अन्तःकरण मुझमें आत्मसात् हो चुका है तथा जो श्रद्धा के साथ (दिखावे या भक्त कहलाने के लोभ से या सिद्धि के स्वार्थ से नहीं) निरन्तर चिन्तन भजन करते रहते हैं वे मेरे हृदय में

ही जुड़ जाते है। उनके हृदय की हर धड़कन, हर चिन्ता मेरी अपनी चिन्ता बन जाती है। मैं पूर्णकाम तथा निर्द्वन्द्व हूँ, अतः जो मेरा हो जाता है उसे मैं अपने जैसा बना कर छोड़ता हूँ—

"योगिनामपि सर्वेषां
मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां
स मे युक्ततमो मतः ॥"
६/४७

इस श्लोकमें 'युक्ततम' शब्द विशेष महत्व का है। युक्त योगी वह है जो—

युक्त इत्युच्यते योगी
समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

अर्थात् पत्थर, ढेले और स्वर्ण को एक समझता है अर्थात् प्रकृति पर समदृष्टि रखता है। जो भाव भक्ति से ईश्वर को भजता है वह युक्ततर कहलाता है किन्तु जिसने अपने अन्तःकरण में अपने इष्ट को बैठा लिया है वह सब से अधिक ईश्वर के निकट है। जो जितना निकट हो जाता है उतना ही वह निर्विकल्प हो जाता है। भक्ति शास्त्र में इसी को निर्भरा भक्ति भी कहते हैं। बाबा तुलसी ने भगवान से यही प्रार्थना की है कि हे भगवान् यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों तो मुझे युक्ततम् योगी बना लो। अपनी निर्भरा भक्ति देकर मेरा बोझ अपने ऊपर ले लो।

'भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे ।
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं मे ॥
—रामायण

योगिराज हनुमान अशोक वाटिका में सीता जी के आशीर्वाद से प्रपत्ति के चरमफल निर्भरा भक्ति को प्राप्त कर परम आनन्दित हो जाते हैं।

जो अपने मन और अपनी बुद्धि से प्रभुजी का सौदा कर लेता है वह कभी घाटे में नहीं रहता एक बार पूर्ण समर्पण हो जाय तो साधक उन का अपना निजी हो जाता है। श्री रामकृष्ण-परमहंस कहते थे कि एक बार मालिक से प्रगाढ़ प्रेम हो जाय तो वह सब कुछ सेवक को वे हिचक छोड़ देता है तथा कहाँ पर क्या है इसका उसे स्वतः ज्ञान करा देता है। सेवक ही उसका मालिक बन जाता है। इसी प्रकार प्रभु कृपा हो जाय तो ज्ञान ऐश्वर्य तथा वैराग्य स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। गीता में भगवान कहते हैं—

मय्यर्पित मनोबुद्धि
मामेवैष्यस्यसंशयम् ।'
८/७

अर्थात् योगी मन और बुद्धि को प्रभु को सौंप कर प्रभु में ही रमण करने लगता है

ऐसे योगी नित्य युक्त कहलाते हैं । नित्ययुक्त योगी ही युक्ततम् होता है। श्री मद्भगवद् गीता के नवम अध्याय के चौदहवें श्लोक में सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण ने संकेत दिया है जिससे नित्ययुक्ति को जाना जा सकता है।

सततं कीर्तयन्तो मां
यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या
नित्ययुक्ता उपासते ॥
९/१४

अर्थात् नित्ययुक्त योगी सदा निरन्तर— 'रामहि सुमिरिय, गाइय रामहि, सन्तत सुनिय राम गुन ग्रामहि' की स्थिति में रहकर भजन करता है और अपने आराध्य के चरणों में नत मस्तक होने के अतिरिक्त कुछ और नहीं जानता। उसका प्रेम इतना अटूट होता है कि संसार के कोई प्रलोभन तथा पहाड़ से दुःख भी उसके प्रेम में बाधक नहीं बनते।

'कामिहि नारि पियारि जिमि,
लोभिहि जिमि प्रिय दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर हि
प्रिय लागहु मोहि राम ॥'

यह स्थिति होती है युक्ततम योगी की ।

इस 'निर्माण भक्ति' 'युक्ततम' योग स्थिति तथा 'प्रपत्ति' का विवेचन विभिन्न शास्त्रों तथा पद्धतियों में विभिन्न नामों से उपदिष्ट है। वैष्णव आचार्यों के ग्रन्थ अर्थपञ्चक में आचार्याभिमान योगात्मक उपासना पद्धति का उल्लेख मिलता है। यह ईश्वर प्रणिधान का बाह्यरूप है। अपने आचार्य के समक्ष पूर्णतया समर्पण करने की क्रिया को आचार्याभिमान योग कहते हैं। जैसे माता शिशु की चिकित्सा के लिए स्वयं औषधि ग्रहण करती है और अपने दुग्ध पान द्वारा शिशु को निरोग कर देती है। इसी प्रकार आचार्य (गुरु) शिष्य की मुक्ति के लिए उस का चिन्तन करता है। गुरु और शिष्य के बीच दृढ़ प्रेम का ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो शिष्य समर्थ सिद्ध कोटि के—गुरुदेव के चरणों में सर्वात्मना समर्पित हो जाता है उसके संस्कार चक्र का भुगतान गुरुदेव स्वयं करने लगते हैं। श्री गुरुदेव उसके लिए औषधि डाक्टर तथा न्यायाधीश सब कुछ स्वयं बन जाते हैं। योग-योगेश्वर आनन्दवान्द श्री प्रभुजी अपने प्रिय शिष्यों के इस प्रकार के कार्य करते देखे गये हैं। जो इस मार्ग के व्यक्ति नहीं हैं उन्हें यह बात अविश्वस्य ही लगेगा किन्तु जिन पर उनकी कृपायें सतत् बरसती हैं वे प्रायः उनकी लीलाओं को देखकर आनन्द के अश्रु बहाते रहते हैं।

श्री सम्प्रदाय—रामानुज सम्प्रदाय की दो शाखायें हैं—१-वडकलै (औदीच्य) २-टेङ्कलै (दाक्षिणात्य) प्रथम शाखा में मार्जार भक्ति दूसरी शाखा में मार्जार भक्ति को ईश्वर की

अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना है। वानरी अपने बच्चे को सुरक्षित पहुँचाती है किन्तु इसके लिए बच्चे को प्रयत्न करके अपनी माँ के पेट से चिपकना पड़ता है बिल्ली स्वयं अपने बच्चे को उठाकर मजबूती से अपने दाँतों में दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देती है। पहले सिद्धान्त में बच्चे को प्रयत्न करना पड़ता है और दूसरे सिद्धान्त में माँ स्वयं बच्चे के लिए प्रयत्न करती है। जब मन पूर्ण भावना तथा श्रद्धा के साथ इष्ट में समर्पित हो जाता है तो मार्जार भक्ति उदित होती है।

उस स्थिति में गुरुदेव शिष्य के रोग दुःख स्वयं अपने शरीर पर ले लेते हैं और भोग उस का भुगतान कर शिष्य का कल्याण कर देते हैं। परमगुरु ईश्वर का अनन्य चिन्तन बन जाने पर वे अपने भक्त की चिन्ता करते हैं। भक्त आनन्द करता है और उसके आराध्य धनुष-बाण लेकर उसकी रखवाली करने लगते हैं।

—☼☼—

❀ विचार-कण ❀

—दुःखियों के दुःख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़ो, भगवान तुम्हें सफलता देंगे ही। मैंने अपने हृदय में इस भार को और मस्तिष्क में इस विचार को रख कर बारह वर्ष तक भ्रमण किया। मैं तथाकथित बड़े और धनवान व्यक्तियों के दरवाजों पर गया। वेदना-भरा हृदय लेकर और संसार का आधा भाग पार कर, सहायता प्राप्त करने के लिए मैं इस देश (अमरीका) में आया। ईश्वर महान् है। जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस भूखण्ड में शीत से भूख से भले ही मर जाऊँ, पर हे तरुणों, मैं तुम्हारे लिए एक वसीयत छोड़े जाता हूँ, और वह है यह सहानुभूति—गरीबों, अज्ञानियों और दुःखियों की सेवा के लिए प्राणपण से चेष्टा।

—× × × × ×

मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुएँ वृथा तथा क्षणभंगुर हैं, पर वे ही जीवित हैं, दूसरों के लिए जीते हैं, शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

× × × × ×

—मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आँसू पोंछने या अनाथों को रोटी देने में असमर्थ है।

—स्वामी विवेकानन्द

[पृष्ठ १२ से आगे का शेष]

❁ योग की साधना कैसे ? ❁

उसके बाद तीन-तीन बार हाथ पैरों को झटकना चाहिये इसी का नाम उत्क्षेपण है। इन नौ क्रियाओं को इस प्रकार विधिपूर्वक कर लेने के बाद जीवनतत्व की साधना पूरी हो जाती है। इस प्रकार यह जीवन तत्वसाधन प्रत्येक गृहस्थ एवं विरक्तों के लिये नैत्यिक व्यायाम के रूप में कर लेने पर शारीरिक स्वास्थ्य अवश्य उत्तम बन जायेगा। इसके बाद प्रत्येक साधक को चाहिये कि कम से कम एक घण्टा अपने गुरु मन्त्र का बतायी गयी विधि के अनुसार जाप करना चाहिये। और कम से कम आधा घण्टा ध्यानाभ्यास हर साधक को करना चाहिये। यह हमने कम से कम नियमावली बनायी है। इस नियमावली के अनुसार प्रातः पौने चार बजे से ४-१५ बजे तक आधा घण्टे में साधक शौच, स्नान, दन्त धावन इत्यादि से निबट जायेगा। उसके बाद सवा चार बजे से ५-३० तक जीवन तत्व योगासन आदि नैत्यिक व्यायाम हो जायेगा। उसके बाद ५-३० से ६-३० तक मन्त्रजप, ६-३० से ७-१५ बजे तक ध्यानाभ्यास, उसके बाद साधक को अपनी परिस्थिति के अनुसार थोड़ा शुद्ध हवा में भ्रमण करना चाहिए। भ्रमण के बाद घर आकर अपना प्रातःकालीन भोजन दुग्धपान आदि कर लेना चाहिये। इसके बाद अपने नैत्यिक नौकरी, व्यापार बिजनिस आदि कार्यों में लग जाना चाहिये साधक को चाहिये कि अपना आहार शुद्ध सात्विक एवं हल्का रखे। एवं पत्तों के सागों का भोजन अधिक करे। विशेषतः जिन लोगों को अधिक मात्रा में कोष्ठबद्धता रहती है उनको चाहिये लौकी, एवं पपीता की सब्जी, मेथी पालक एवं बथुए का साग अधिक मात्रा में सेवन करें। और यथासम्भव मौसमी का रस लेते रहना चाहिये। शाम को लगभग ५ बजे आधा सेर गर्म दूध शनैः शनैः थोड़ा गर्म करके पीना चाहिये। इस प्रकार का खानपान ठीक रखने से शारीरिक व मानस दोनों स्वास्थ्य बन जायेंगे। इसके अतिरिक्त सायंकालीन भोजन कर लेने के बाद थोड़ी देर तक भ्रमण का नियम रखना चाहिए। भोजन करने के १ घण्टा उपरान्त अर्थात् ९ से १० बजे तक नित्य गुरुमन्त्र का जाप करे। और ठीक पौने दस बजे योग-ध्यान करते हुए सो जाये। ध्यानविधि वही रखनी चाहिये जो दीक्षाकाल में समझायी गयी है। यदि सोने से १ घण्टा पहले १ घण्टा मन्त्रजाप और आधा घण्टा शवासन में सीधा लेट करके साधक सोता व बतलायी गयी विधि के अनुसार सोता है तो उनका यह ध्यान योगनिद्रा के रूप में बदल जायेगा।

इस लेख के अन्दर हमने सर्वसाधारण के लिये पालनीय नियमावली लिखा दी है। उपरोक्त विधि के अनुसार साधु व गृहस्थी जो भी इन नियमों का पालन करेंगे ये सभी नियम लक्ष्यप्राप्ति में उनके परम सहायक होंगे। इस लेख का शीर्षक योग साधना को समझाने के लिए ही रखा गया है। आशा है सभी साधक वृन्द इस लेख को पढ़कर इसका सदुपयोग अपनी नैत्यिक जीवन चर्या में नियमावली के रूप में बना लेंगे। जिससे सभी का भला हो और सभी लोग कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर हो सकें।

—ॐ—

यौगिक प्रश्नोत्तरी

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

आश्रम का शुद्ध वातावरण था। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में इधर-उधर से अभ्यासी लोग आकर अपने अभ्यास में लगे हुये थे। योग शिक्षक साधक समुदाय अपनी-अपनी कक्षाओं में योग शिक्षा दे रहे थे। ध्यानाभ्यासी लोग अपने मन को ध्यानाभ्यास में लगाकर लीनता प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार के वातावरण में थोड़ी ही देर बाद श्री आनन्द-कन्द प्रभु जी की आरती का समय आया। सभी साधक समुदाय गद्-गद् कण्ठ होकर आरती का उच्चारण करने लगा। आकाश तल पर ध्वनि निनादित हो उठी—

"चरणारविन्दम् गोविन्द नमामि
गुरुदेव शरणम् गुरुदेव नमामि"

ज्योंही श्रीप्रभुजी की आरती जय ध्वनि के साथ सम्पन्न हुई। साधक समुदाय सभी यथा स्थान अपने आसन पर बैठ गये। कुछ जिज्ञासु साधकों के मन में तो प्रश्न जिज्ञासा उठी हुयी थी। वे लोग अपनी शंका निवृत्ति के लिये कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे।

"आकारी रैंगतेगत्यां
चेष्टया भाषणेन च
नेत्र वक्त्र विकारैश्च
लक्षते अन्त गतं मनः।"

उक्त सिद्धान्तानुसार श्री योगाचार्य जी ने साधकों के मनोभावों को समझ लिया और वे बड़ी गम्भीर मुद्रा से कहने लगे—"भाई तुम्हारे मनों के अन्दर कुछ जिज्ञासा दिखलाई दे रही है यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो। तुम्हारे मनोविचलित भावों को शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार समझाने का प्रयत्न करेंगे।" श्री योगाचार्य जी के ऐसा आदेश देने के बाद तुरन्त एक जिज्ञासु साधक ने प्रश्न किया—

"हे प्रभो आप कृपा करके यह बतला दीजिये कि योग किसको कहते हैं? ताकि आप के उत्तर को समझकर हम सही रूप से योगा-

नुगामी बन जावे।

उत्तर—"हे पुत्र सुनो चित्त वृत्ति निरोध को योग कहते हैं। शास्त्रीय परिभाषानुसार 'चित्तवृत्तिनां निरोधरेव योगः' अर्थात् चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन ही योग कहा जाता है।'

प्रश्न—"हे गुरुदेव! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन हो जावेगा तब साधक की क्या स्थिति होगी? और चित्त वृत्तियों का आत्मा से क्या सम्बन्ध है? यह बात भी खोल कर स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिये—

उत्तर—'हे पुत्र सुनो! आत्मा एक शुद्ध निर्मल ज्योति है जिसमें कभी कोई विकार नहीं। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि—

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम-
क्लेद्यो शोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर-
चलोऽयं सनातनः'

अर्थात् आत्मा बिल्कुल अच्छेद्य, अशोष्य अकम्प तथा अविकारी है। केवल मात्र बौद्धिक ज्ञान द्वारा ही यह सुखी दुखी दिखलाई देता है वस्तुतः स्वयं तो यह बिल्कुल अविकारी है।

प्रश्न—'हे गुरुदेव! कृपा करके यह बात समझाइये कि बुद्धि और आत्म का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो—आत्मा एक विकार रहित निर्मल ज्योति है और बुद्धि जड़ है। आत्मा का तेज जब बुद्धि पर पड़ा तो वह चेतन हो उठी। चेतन हो उठने पर उस बुद्धि ने अपना प्रभाव आत्मा पर डाला अर्थात् बुद्धि ने अपना स्वरूप आत्मा को दिखलाया, उसका प्रभाव पड़ जाने से आत्मा अपने आप को सुखी और दुखी अनुभव करने लगा। इसी लिये अध्यात्म की परिभाषा में आत्मा को बुद्धिबोधात्मा कहा जाता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! बुद्धिबोधात्मा का क्या अर्थ है? इससे तो स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि आत्मा पर बुद्धि का प्रभाव पड़ गया, अब तो सीधे शब्दों में आत्मा विकारी बन गया?

उत्तर—हे पुत्र! ऐसी बात नहीं है विकारी तो नहीं बना किन्तु विकारी जैसा भासित होने लगा। इस बात को तुम इस प्रकार से समझो जैसे बिजली की रोशनी हरे बल्ब के अन्दर हरी, पीले के अन्दर पीली, लाल के अन्दर लाल तथा काले के अन्दर काली दिखलाई देती है। इसी प्रकार आत्मा का निर्मल प्रकाश भी त्रिगुणात्मिका जड़ बुद्धि के अन्दर भी जैसा उसका स्वरूप है वैसा ही भासित होने लग गया। इसी कारण से संसार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को सुख दुःख की अनुभूति होती रहती है। यही जन्म और मरण का कारण है

इसी कारण भगवान पतञ्जलि देव ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' कह करके चित्त वृत्तियों के निरोध निरोध को योग बतलाया है।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन निरोध हो जावेगा तब चित्त वृत्तियें तो रहेंगी ही नहीं ? तब आत्मा की क्या स्थिति होगी, आत्मा कैसे स्वरूप में रहेगा ? अब तो आत्मा बुद्धि बोधात्मा है इसलिये सुख दुःख का अनुभव करता रहता है। जब चित्त वृत्तियें बिल्कुल होंगी ही नहीं उस हालत में आत्मा सुख दुःख का उपभोक्ता रहेगा नहीं तो उसका क्या स्वरूप कहलायेगा ? कृपा करके यह बात स्पष्टीकरण के साथ आप मुझे समझा दीजिए।

उत्तर—हे पुत्र ! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक एवं शास्त्र सम्मत है और इस का उत्तर स्वयं भगवान पतञ्जलि देव जी ने ही योग दर्शन के तीसरे सूत्र में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में दे दिया है वह इस प्रकार से है—

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

अर्थात् तब द्रष्टा जीवात्मा अपने शुद्ध-स्वरूप के अन्दर प्रतिष्ठित हो जाया करता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! स्वरूप प्रतिष्ठा कैसी होती है ? कृपा करके यह बात और मुझे समझा दीजिये। क्या स्वरूप प्रतिष्ठा हो जाने के बाद आत्मा को सुख दुःख आदि का कोई अनुभव नहीं होता ?

उत्तर—हाँ पुत्र ! स्वरूप स्थिति का नाम निरोध समाधि है। उसी को योग कहा गया है। उपनिषद् कार इसके विषय में खोलकर स्पष्ट लिखते हैं कि—

''समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मनः समाधिर्वै योगः''

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को ही योग कहा गया है और वही निरोध समाधि कहलाती है। निरोध समाधि में पहुँच जाने पर आत्मा बिल्कुल शुद्ध स्थिति में आ जाया करता है, जहाँ तक मन और बुद्धि की कोई पहुँच नहीं रहती। निरोध समाधि की स्थिति को अनुभवी सन्तों ने इस प्रकार कहा है—

'मन बुद्धि से परे कोई
विरला जाने सन्त'

और इसके साथ-साथ 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थान' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यास देव महाराज ने भी अपने शब्दों में पूर्ण स्पष्ट बतला कर दिया है—

'स्वरूप प्रतिष्ठा तदानीं
चित्त शक्तिर्यथा कैवल्य,
व्युत्थान चित्ते तु सति
तथापि भवन्ति न तथा।'

अर्थात् स्वरूप प्रतिष्ठा का अर्थ है वैसी चेतन शक्ति मोक्ष में हुआ करती है। यद्यपि आत्मा संसार में जन्म और मरण के दुःखों का अनुभव करता हुआ भी स्वरूप प्रतिष्ठा के रूप में तो बिल्कुल विकार रहित शुद्ध बुद्ध मुक्त है ही किन्तु ऐसा होने पर भी क्योंकि वहां पर बुद्धि बोधात्मा है इसलिये स्वरूपात्मा नहीं है। स्वरूप प्रतिष्ठा तो यह तभी कहलायेगी जब इसका बौद्धेय बोध बिल्कुल समाप्त हो जायेगा और आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूप में रहजायेगा।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! इसका तो अर्थ यह हुआ कि निर्बीज अर्थात् निरोध समाधि ही समाधि है। इसके अतिरिक्त मैं अपने गुरुभाई और बहिनों के समुदाय में यह देखता हूँ कि लोग विभिन्न प्रकार की अपनी ध्यान स्थिति को सुनाते और बतलाते हैं। ऐसी हालत में देखने और सुनने का जो विषय है वह तो बुद्धि का ही ज्ञान हुआ। अतः अच्छे अच्छे ध्यानी साधक को जो जो ध्यानानुभूतियें होती रहती हैं वे सबका योग नहीं है?

उत्तर—हे पुत्र ! तुम बात तो ठीक कहते हो। तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है किन्तु "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान व्यास देव जी ने एक संकेत दिया है जो निम्न प्रकार है—

सर्व शब्दा ग्रहणात् सं प्रज्ञातोऽपि योग इत्याऽऽख्यायते, चित्त हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम् प्रख्यारूपं हि चित्त सत्वं रजस्तमोभ्यां संसृष्ट मैश्वर्य विषय प्रियं भवति,

तदेव तमसाऽनुविद्धमाधर्मा ज्ञानावैराग्या नैश्वर्योपगं भवति, तदेव प्रक्षीण मोहाव रणं सर्वतः प्रद्योतमानमनु विद्धम रजो मात्रया धर्मज्ञान वैराग्यैश्वर्योपगं भवति, तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूप प्रतिष्ठं सत्व पुरुषान्यता ख्याति मात्र धर्ममेघध्यानोपगं भवति, तत्परं प्रसंख्याना मित्या चक्षते ध्यायिनः चित्तशक्तिरपरिणामिन्य प्रतिसंक्रमा दर्शित विषया शुद्धा चानन्ता च सत्व गुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेक ख्यातिरिति; अतस्तस्यां विरक्त चित्तं तामपि ख्याति निरुणद्धि तदवस्थं चित्तं संस्कारो पगं भवति स निर्बीजः समाधिः न तत्र किंचित सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञातः द्विविधः स योगश्चित्त वृत्ति निरोध इति।

अर्थात् क्योंकि 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' इस सूत्र में 'योगः सर्व चित्त वृत्ति निरोधः' ऐसा नहीं कहा गया है इसलिये सम्प्रज्ञात को भी योग ही कहा गया है क्योंकि प्रख्या

प्रवृत्ति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। एक नियम की बात कहती है और वह यह कि— हमारे चित्त में जिस समय जो गुण प्रधान होता है उससे बाकी अन्य गुण उसके अधीन काम करने वाले उसके सहचारी रहते है। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण एवं तमोगुण उसके सहचारी रहते है तब वह चित्त ऐश्वर्य को चाहने वाला होता है और उसके बाद उस ही चित्त में जब तमोगुण की प्रधानता आ जाती है तब यह चित्त अधर्म अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की ओर झुका रहता है और जब वह चित्त प्रक्षीण मोहावरण हो जाता है केवल मात्र बहुत थोड़ा सा रजोमात्रा से अनुविद्ध रहता है तब वह चित्त धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य को चाहने वाला होता है और वही चित्त जब रजोगुण की मात्रा से बिल्कुल छूट जाया करता है तो स्वरूप प्रतिष्ठित धर्ममेघ समाधि वाला कहलाया करता है, ध्यानी लोग इसे परम प्रसंख्यान कहते है। वैसे नियमानुसार चित्त शक्ति अर्थात् योगात्मा बिल्कुल अपरिणामनीय है। इसके ऊपर किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता शुद्ध और अनन्त है किन्तु बुद्धि का प्रभाव पड़ जाने से दर्शित विषया कहलाती है और जो यह विवेक ख्याति है वह भी सतोरजोगुणात्मिका होने के कारण हेय है। इस लिये उसमें भी विरक्त हुआ साधक गुणात्मिका होने के नाते से उसको भी छोड़ देता है। अब चित्त उस ख्याति को भी छोड़ देता है तब उस चित्त में मैं हूं इस प्रकार की वृत्ति शेष रह जाती है। यह वृत्ति भी समाप्त हो जाने पर साधक निर्बीज समाधि तक पहुंच जाता है। इस समाधि को असम्प्रज्ञात समाधि कहते है इस लिए सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो प्रकार के योग का वर्णन किया है और यहां से भगवान पतञ्जलि ने अथ योगानुशासनम् कहकर योग दर्शन का आरम्भ किया है, इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान व्यास देव ने जो पंक्तियां लिखी है इसमें चित्त किन-किन अवस्थाओं में रहता है वह समझाया है जो यह इस प्रकार है—

"योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यं

योगः —समाधिः स च सार्वभौम-श्चित्तस्य धर्मः क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तं, एकाग्रम्, निरुद्धम्, इति चित्त भूमयः तत्र विक्षिप्ते चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्कर्म बन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते स च वितर्कानुगतो, विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्यु परिष्टात्प्रवेदयिष्यामः सर्व वृत्ति निरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः।

अर्थात् योगानुशासन शब्द का अर्थ शास्त्र में प्रवेश करने के अधिकार को कहा गया है। 'योग: समाधि:' यह कह के योग शब्द की अभिव्यक्ति की है यह समाधि सार्वभौम चित्त का धर्म है। क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध ये चित्त की भूमिकायें कहलाती हैं और यहाँ पर विक्षिप्त चित्त में, क्योंकि विक्षेप प्रधान है और समाधि गौण है, इसलिये विक्षेपोपसर्जनी समाधि को योग पक्ष में नहीं माना गया है और जो समाधि चित्त की एकाग्रावस्था को प्राप्त होती है जिसमें पहुँचकर साधक वस्तु तत्व की यथार्थता को जान लेता है और क्लेश बन्धन क्षय हो जाते हैं—कर्म बन्धन कमजोर पड़ जाता है और चित्त को निरोध की ओर ले जाती है, यह समाधि सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणी होती है।

१-वितर्कानुगम २-विचारानुगम ३-आनन्दानुगम और ४-अस्मितानुगम। ये चारों श्रेणी सम्प्रज्ञात समाधि की हैं इनमें चित्त वृत्तियें काम करती रहती हैं और निरोध में जाकर चित्त का समूलोन्मूलन हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपने सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ बतलाई हैं वे तो मैं बाद में समझ लूँगा किन्तु पहले मुझे सार्वभौम चित्त किन-किन भूमिकाओं में किस किस प्रकार रहता है, यह बात पूरी तरह स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिये—ताकि मैं भली प्रकार समझ पाऊँ कि चित्त अपनी अपनी भूमिकाओं में किस प्रकार रहा करता है और बाद में निरोध तथा निर्बीज स्थिति में चित्त की क्या स्थिति होती है?

उत्तर—हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो। पहले भी तुम्हें समझाया था कि प्रख्या प्रवृत्ति और स्थिति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। जैसे जहाँ पर जिस गुण की प्रधानता हो जाती है वहाँ दो अन्य गुण उस प्रमुख चित्त का अनुगमन करते हैं। जैसे भगवान व्यास देव ने सारे संसार के प्राणियों को उपरोक्त पाँच भूमिकाओं में बाँट दिया है। उनमें से मूढ़ावस्था के प्राणी वे कहलाते हैं जिनमें तमोगुण की प्रधानता होती है और रजोगुण व सतोगुण गौण रूप से रहा करते हैं। ऐसे प्राणी अधर्म, अज्ञान अवैराग्य एवं अनैश्वर्य को चाहने वाले गधे, चोरे तथा अजगर आदि प्राणियों की तरह मूढ़ता के प्राणी कहलाते हैं। इसके बाद दूसरे प्राणी वे हैं जिनमें रजोगुण प्रधान हो जाता है और तमो तथा रजोगुण गौण रूप से कार्य करते हैं। ऐसे प्राणी परलोक वृत्ति को नहीं समझते। राम, कृष्ण, विष्णु शिवादि को नहीं मानते उन लोगों का सिद्धान्त होता है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्
ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।
भस्मी भूतस्य देहस्य
पुनरागमन कुतः

अर्थात् मनुष्य संसार में जिन्दा रहे तब तक ऐश और आराम में रहे। कर्जा लेकर घी को पिये क्योंकि अन्त में शरीर जल कर भस्म हो जायेगा इसका पुनरागमन होगा ही नहीं। ऐसे प्राणी रजोगुण प्रधानक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं, तीसरे प्राणी वे हैं जो विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं इन लोगों में सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण व तमोगुण गौण हो जाते हैं। ये पारलौकिक विचारधारा मानते हैं श्रीराम, कृष्ण, विष्णु तथा शिवादि के अन्दर पूरी-पूरी श्रद्धा रखते हैं किन्तु रास्ता न मिलने के कारण विवश रहते हैं वे ही लोग अपने मुख से बार-बार संकीर्तन किया करते हैं कि—

राम नाम रटते रहो
जब लगि घट में प्रान
कबहुँ तो दीन दयाल के
भनक पड़ेगी कान।

इन लोगों में यह विश्वास अवश्य होता है कि ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। भगवान राम, कृष्ण विष्णु शिवादि के दर्शन हो सकते हैं किन्तु कोई उपाय न मिलने पर असमर्थ रहते हैं। इससे आगे चौथे प्राणी एकाग्र-अवस्था के कहलाया करते हैं। इनमें सतोगुण चमक उठता है। मोहावरण क्षीण हो जाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अन्तर्मुखता धारण कर लेती हैं और उस सतोगुण के दिव्य प्रकाश के अन्दर श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान सदाशिव तथा अन्य देवी-देवताओं के दर्शन भी होने लगते हैं धीरे-धीरे ये साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा तक पहुँच जाते हैं और इनकी अनुभूतियाँ सत्य होने लग जाती हैं। इससे आगे पाँचवी अवस्था निरोधावस्था है जिसमें साधक के चित्त केवल अन्तिम प्रत्यय मात्र ही शेष रहता है यह भी निर्बीज समाधि में जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है इस निर्बीज समाधि में ही स्वरूप में आत्मा प्रतिष्ठित हो जाता है, इस स्थिति में चित्तवृत्ति निरोध को प्राप्त करके "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" इस सूत्र का यथार्थ ज्ञाता बन जाता है। इस ही निर्बीज समाधि को प्राप्त करके योगी अपने आपको समतावस्था में देखता है और प्राप्तव्य को पाकर कृत कृत्य हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपके उपदेशामृत को सुनकर मैंने योग शब्द के अर्थ को भली प्रकार समझ लिया है। आशा है आपकी पूर्ण कृपा से मैं अवश्य ही योगाभ्यासी बन जाऊँगा। सत्संग का समय समाप्त हो गया। सभी साधकों को इस प्रश्नोत्तरी से बहुत लाभ हुआ है एवं सभी

योग की भूमिका और कबीर-साधना (१)

डा० श्री रमेशचन्द्र मिश्र

कबीर के अध्यात्म चिन्तन को समग्रता को कबीर की साधना कहा जा सकता है। कबीर-वाणी में ज्ञान, योग और भक्ति तीनों का ही सुन्दर समन्वय है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा आगमत-चिन्तन के अतिरिक्त कबीर-वाणी में योगसाधना का सर्वाधिक महत्त्व बताया गया है। लेकिन, इस यौगिक साधना विषयक प्रक्रिया को कबीर ने सुरत-साधना बनाकर 'सहजयोग' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कबीर में हठयोग की साधना उसी रूप में देखने को नहीं मिलती, जिस रूप में हठयोग शास्त्र में वर्णित है। कबीर योग की जटिलता से सरलता की ओर अग्रसर हुए हैं। इसलिए हठयोग का

पिछले पृष्ठ का शेष

अपनी वृत्तियों को योगानुगामी बनाकर अपनी परम कुटियों को चले गये।

आशा है अन्य सभी जिज्ञासु पाठक गण भी इस प्रश्नोत्तरी को पढ़कर अपने मनों को योगानुगामी बनायेंगे एवं जीवन सार्थक गामी बनेंगे।

—०:०—

विधिवत् विवेचन अष्टांग योग वर्णन, षट्चक्र भेदन, कुण्डलिनी जागरण का विवेचन-विश्लेषण आदि तो कबीर-वाणी में नहीं मिलता। किन्तु युग के प्रभाव से गोरखनाथ तथा रामानन्दी योगियों के संस्कारों से परिपक्व हुए कबीर ने अपनी वाणी में पूरक-रेचक-कुम्भक आदि प्राणायाम की क्रियायें, खेचरी मुद्रा, भ्रमि, कुण्डलिनी उत्थापन, दस दरवाजे, ७२ कोठरियों, १४ चन्द्रमाओं, द्वादश कोठों, ७२ नाड़ियों का उल्लेख अवश्य किया है। तन्त्र साधना और अवधूत-परम्परा की अनेक बातें, जो उस युग के वातावरण की हवा में थीं, उन सब के प्रति कबीर ने अपनी प्रतिक्रिया पक्ष या विपक्ष वर्णनात्मक शैली में यथास्थान बताई है। जैसा कि ऊपर उल्लेख है, कबीर की साधना में प्रेम-भक्ति ही नहीं, योग युक्ति भी सम्मिलित है और यो युक्ति में हठयोग, मनोयोग या लययोग, सहजयोग या सहजसाधना आदि योगसाधना अपेक्षित है, मन केहारा ही उनकी साधना योग-युक्ति का केन्द्रीय बिन्दु है। मनोयोग में मन की निश्चलता एवं निश्चलता वालों पर विजय, चित्त एकाग्रता,

आडम्बर परित्याग, इन्द्रिय संयम, ध्येय केन्द्रीकरण एवं ईश्वर प्रणिधान आदि साधना के आवश्यक अंग बने हैं। कर्मयोग में कर्म की, यज्ञादि या मूर्तिपूजन जैसी चर्या न होकर निष्काम वृत्ति ही केन्द्रीय तत्व होती है। निष्काम कर्मयोग साधक के लिए लोक-संग्रह की भावना से सम्पन्न होता है, किन्तु इस भावना में भी भगवदर्पण की ही प्रधानता होती है। साधक-चिन्तक विवेक-वैराग्यपूर्वक परमतत्व में अपने को निर्वाहित करता हुआ आत्म साक्षात्कार की दशा में प्रतिष्ठित करता है, यही ज्ञानयोग है। कबीर-साधना चिन्तन में 'ज्ञान' का उपयोग मन-बुद्धि के सन्तुलन के साथ शरीर शक्ति की प्रवृद्धि एवं मन की एकाग्र शक्ति के विकास के लिए किया गया है। और इस क्रिया में अग्रसर करने, स्थिति बनाए रखने की मुख्य भूमिका निभाती है, गुरु की प्रेरणा और उसका निदर्शन। अतः कह सकते हैं कि ज्ञान योग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वित रूप कबीर साधना का साध्य रहा है। यद्यपि ऊपर से देखने पर ये साधना मार्ग परस्पर विरोधी लगते हैं, किन्तु कबीर ने इन साधना मार्गों को एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी रूप में अपनाया है। एक उदाहरण द्वारा इस समन्वित साधना को हिंडोल के रूपक के द्वारा समझा जा सकता है। जिसमें आत्म-नारि प्रेमभक्ति के उस हिंडोले पर झूलती है, जो सन्तों का विश्राम स्थल है, जिसमें चन्द्र सूर्य साधना अर्थात् इड़ा-पिंगला संयोग करते हुए सुषुम्ना मार्ग से शक्ति उत्कर्षमयी होकर पंचेन्द्रियों को आन्तरिक आनन्द दशा में निमग्न करते हुए, 'रामरसायन' का आस्वाद लेकर, सहज-शून्य गगन मंडल में पहुँचकर कुण्डलिनी अपने सत्य-कुल में अन्तर्गत हो जाती है। इस उदाहरण में कबीर-साधना के अनेक पारिभाषिक शब्द भी सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं—

'हिंडोलना' तहाँ झूलें आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतनि को बिश्राम
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलें जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत को बास।
जिनि यहु अमृत चाखिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहज सुंनि को नेहरो, गगन मंडल सिरि मोर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलें हिंडोल॥
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल को घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट॥
नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइ लै, गुर गमि उतरौ पार॥

—क० ग्रं०, पद १८

गुरु गम से पार उतरने वाले इन कबीर की वाणी में अनेक साधनात्मक स्थितियों को

पारिभाषिक शब्दावली में बांधा गया है। यह प्रतीक शब्दावली यौगिक पद्धति से प्रेरित है। अतः इसको कबीर-पारिभाषिक शब्दावली एवं सांकेतिक प्रतीक रूप में माना जाता है। उन में से कुछ को यहां प्रस्तुत करके हठयोग परम्परा से गृहीत शब्दों की अर्थ-व्याप्ति का अनुमान सम्भव है। वे यौगिक शब्द हैं— अजपाजाप, अनहदनाद, अमृत, अरध-उरध साधना, अवधू, उनमनी अवस्था, उलटी गंगा, औंधा कुआं, कुण्डलिनी शक्ति-जागरण-स्वप्नावस्था, गगन-मण्डल, त्रिवेणी संगम, जीवात्मा-की प्रिय कल्पना के आधार पर विभिन्न अवस्थायें, झरना, मानसरोवर स्नान, दिव्य विवाह, नाद-बिन्दु एवं चन्द्रसूर्य संयोग, निरंजन, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, ब्रह्माग्नि, मरजीवा, शून्य सहज शून्य, सहज समाधि, सुरति निरति साधना, हंस-द्विदल का कमल आदि। यहां क्रमशः कबीर-वाणी में उल्लिखित-अभिव्यक्त साधना प्रेरित उक्त शब्दों के परिवेश का विवेचन प्रस्तुत है। सम्पूर्ण योग-युक्ति की प्रेरणा अनाहत-निर्देशक अथवा गुरु से मिलती है। अतः यहां सर्वप्रथम कबीर-साधना प्रतिपादित गुरु महिमा, नाम स्मरण, अजपाजप, अनहद नाद, अमृत, अवधू, अरध-उरध योग, उनमनी अवस्था, उलटी गंगा, औंधा कुआं, सम्बन्धी विचार प्रस्तुत है।

गुरु महिमा—

हिन्दी-साहित्य में गुरु के महत्व का प्रतिपादन सिद्ध-नाथों की वाणियों में विशेष रूप से निरूपित हुआ दिखाई देता है, भक्तिकाल में ही नहीं, सम्पूर्ण साधना-भक्ति-साहित्य में गुरु महिमा मुक्तकण्ठ से हुई है। हठयोगिक साधना में साधक का मार्ग प्रशस्त करने वाले गुरु का प्रमुख स्थान है। वाणी-साहित्य में वाणी के रहस्य को उद्घाटित करने वाले एवं साधक को और उन्मुख करने वाले पथ प्रदर्शक के रूप में

लोचन अनन्त उघाड़िया,
अनन्त दिखावण हार।
—क० ग्र० १/३

गुरु का महत्व है। गुरु साधक को मन्त्र या शब्द प्रदान करता है, जिससे शिष्य के ज्ञान-चक्षु प्रमादि से अनावृत हो जाते हैं। तत्पश्चात् उसे परम ज्योति की स्थितियों और व्याप्ति का अनुभव होता है। कबीर तो गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने एवं प्रशंसा करते हुए समर्पित बने रहने को सर्वोपरि मानते हैं। वे तो गुरु दिखाइ वाट, बहुतर सम्पूर्ण साधना-सिद्धि का श्रेय गुरु को ही देते हैं। वे कहते हैं कि गुरु ऐसा अहेतुक उपकारी है कि दया भाव से प्रेरित होकर, संसार मार्ग में चलते हुए शिष्य को मार्गदर्शन

दे देता है, जिससे साधक विषय वासना-निद्रा की अवस्था को सहज ही समाप्त कर लेता है—

पीछे लागा जाइ था,
लोक वेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या,
दीपक दीया हाथि॥
—क० ग्रं०, १/११

सतगुरु की अनन्य कृपा होती है तो सहज ही प्रेम-बदली बरस कर साधक की चेतना को रससिक्त कर देती है, जिससे उसके पाप उच्छिन्न हो जाते हैं और अन्तःकरण प्रकाशित हो जाते हैं—

सतगुरु हमसूं रीझि करि,
एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का,
भीजि गया सब अंग॥
—क० ग्रं० १/३४

समर्थ गुरु की वाणी साधक की रक्षा हथियार के रूप में करती है—

कहै कबीर भीतर भिद्या,
सतगुरु के हथियार।

लोक-यात्रा में कबीर सद्गुरु की खोज और उसके चुनाव को विशेष महत्व देते हैं—

जाका गुरु है आंधला,
चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ठेलिया,
दून्यूं कूप पडन्त॥
—क० ग्रं० १/१४

कबीर का अनुभव है कि समर्थ गुरु ही करतार से एकत्व का अनुभव कराते हैं और तब गुरु-गोविन्द दो एकाकार हो जाते हैं—

गुरु गोविन्द तौ एक है,
दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै,
तौ पावै करतार॥
१/२६

सतगुरु के प्रसंग समग्र कबीर-वाणी में गुरुदेव को अंग शीर्षक से स्वतन्त्र रूप में ३५ साखियाँ संकलित हैं और प्रत्येक साखी गुरु के स्वरूप दायित्व एवं योगक्षेम को सम्यक् रूप से व्याख्यायित करती प्रतीत होती है। कबीर ने गुरु को नाविक (केवट), लुहार, निशानेबाज शिकारी (अहेरी), सूरवीर, पारखी आदि लोक-मान्य शब्दों द्वारा सहज रूप में ग्राह्य बनाया है। ऐसा ही परोपकारी है सतगुरु

निर्मल कीन्हीं आत्मा,
ताथैं सदा हजूरि।
—क० ग्रं० १/२५

ऐसे सतगुरु को सदा भेंट चढ़ाकर गुरु-दक्षिणा का दायित्व निर्वाहित किया जाय, यह

उत्कण्ठा कबीर को सदा बनी रही है, क्योंकि गुरु ने दिया है राम और उस राम की तुलना में क्या वस्तु ठहर सकती है—

राम नाम कै पटतरै,
देबे को कुछ नाहि ।
क्या ले गुरु सन्तोषिए,
हौंस रही मन माँहि ॥
—क० ग्रं० १/४

राम जी दाता मुकति को,
संत बतावैं नाम ।

नाम-स्मरण—

गुरु ने जो दिया है, उसका निरन्तर स्मरण अथवा उसमें मन रमे रहना ही नाम स्मरण है। इस नाम-स्मरण का अद्भुत-असीमित अनुभव कबीर-वाणी में देखने को मिलता है। नाम-स्मरण में लय-लीन होने से परम निधान राम में अवस्थिति हो जाती है। इस नाम स्मरण का साधना की तुलना में अन्य साधन तुच्छ हैं—

रमइया गुन गाइये,
जाते पाइये परम निधानु ।
क्या जप क्या तप संयमी,
क्या व्रत क्या इस्नान ॥
—क० ग्रं० परिशिष्ट, पृ० २९२

यह नाम स्मरण असन्तुलित मानसिकता में सम्भव नहीं है, अपरिमित धैर्य एवं सन्तोष के साथ ही इस नाम स्मरण का साधना सम्पन्न हो पाती है—

राम भजै सो जानिए,
जाके आतुर नाहीं ।
सत सन्तोष लीये रहै,
धीरज मन माहीं ॥

आदि-अनन्त को शोध कर ही कबीर नाम-स्मरण को जीवन-सार रूप में प्रस्तुत करते हैं—

कबीर सुमिरण सार है,
और सकल जंजाल ।
आदि अन्त सब सोधिया,
दूजा देखौ काल ॥
—क० ग्रं० २/५

अन्तर्मुखी इन्द्रियाँ मन सहित स्मरण करते-करते जब दशा को प्राप्त करती हैं, तभी रामरत्न की प्राप्ति-साक्षात्कार होता है और तब साधक मन में कोई दूसरा रहता ही नहीं, जिसे नमन किया जाए—

पंच संगी पिव पिव करैं,
छठा जु सुमिरै मन ।
आई सति कबीर की,
पाया राम रतन ॥
मेरा मन सुमिरै रामकूँ,
मेरा मन रामहि आहि ।

अब मन रामहि ह्वै रहा,
सीस नवावों काहि ॥
—क० ग्रं० २/७-८

यह नामस्मरण साधना दुर्लभ-योग है। इसके निर्वाह में नट जैसी वृत्ति-केन्द्रीकरण की आवश्यकता को कबीर ने महसूस किया है—

गुण गायें गुण ना कटें,
रटै न राम वियोग।
अहि निसि हरि ध्यावै नहीं,
क्यूँ पावै दुर्लभ जोग ॥
कबीर कठिनाई खरी, सुमिरत,
सुमिरत हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या,
गिरूं त नाहीं ठाम ॥
—क० ग्रं० २/२८-२९

कबीर-वाणी में सुमिरण का अंग, के अन्तर्गत ३२ साखियाँ संकलित हैं, जो स्मरण-योग का पुरजोर प्रतिपादन करती हैं।

अजपाजाप—

योग-साधना में अजपाजाप की पारिभाषिकता प्रतिपादित की गई है और इस मन्त्र-साधना को योगियों की गायत्री कहा गया है।

दे० गोरक्ष पद्धति, १/४५

साधना-साहित्य में ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है कि निरोध या श्वास-संयम से चित्त वृत्ति और मन केन्द्राभिमुख हो जाते हैं। नाथों में शिव-शक्ति योग से जो सोऽहम्-साधना है, उसी को कबीर आदि संतों ने सोऽहम्-सोऽहम् कह कर प्रतिपादित किया है तथा अहर्निश में संचलित २१६०० श्वास-प्रश्वास की ओर संकेत किया है—

सोहं सोहं तत्तु विचारा।
बंक नाल में किया पसारा ॥
—कबीर, ज्ञान गुदड़ी

सहस इक्कीस छः सै धागा,
निहचल नाकै पावै।

इस अजपाजाप को कबीर सहज जप भी कहते हैं। वास्तव में उन्होंने नाम-स्मरण या राम सुमिरन को ही जाप कोटि में रखा है। राम-नाम तो कबीर का बीज मन्त्र है। इससे कुण्डलिनी का उत्थान होता है। उलटवांसी मूलक इस अजपा जाप में जप-योग की सम्पूर्ण शक्ति समर्पित रहती है—

सुरति समानी निरति में,
अजपा माहैं जाप।

सन्त रज्जब ने अजपाजाप को इस प्रकार परिभाषित किया है—

मन पवन जड़ सुरति कौं,
आतम पकड़े आप।

झीझर झरै अमीरस पीजिये,
तहाँ भंवर गुफा के घाट रे।
नीझर झरै अमीरस निकसै,
तिहि मदिरावल छाका।
—क० ग्रं० पद ४/१५५

गगन गरजि अमृत चवै,
कदली कंवल प्रकाश।
—सा० ४०

अवधू—

कबीर-वाणी में अवधू सम्बोधन का प्रयोग बहुशः हुआ है। अवधूत का अपभ्रंश शब्द है, जिसका अर्थ साधक, योगाभ्यासी, विरक्त योगी (अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतः स उच्यते) आदि है। कबीर ने अवधू शब्द का प्रयोग नाथों की तरह अनुगामी साधक के लिए नहीं लिया अपितु प्रतिपक्षी, प्रतिद्वन्द्वी के लिए लिया है, जिसको वे अर्थोद्बोधन के लिए चुनौती-सी देते दिखलाई देते हैं—

अवधू अगिनि जरै कै काठ।
—क० ग्रं० पद १७४

अवधू ऐसा ग्यान विचार।
वही, पद १७५

अवधू ऐसा ग्यान विचारी,
तार्थें भई पुरिष थैं नारी।
—क० ग्रं० पद २३१

अवधू सो जोगी गुरु मेरा,
जो या पद् को करै निबेरा।
वही, पद १६

अरध-उरध —

अधः-ऊर्ध्व के तद्भव रूप में अरध-उरध शब्द प्रयोग कबीर-वाणी में मिलते हैं। यह यौगिक शब्द एक साधना विशेष की ओर संकेत करता है, जो चन्द्र-सूर्य-संगम, कुण्डलिनी ऊर्ध्वगमन, नाद-बिन्दु संयोग आदि के रूप में भी वर्णित है। योग-साधना में मान्यता है कि पिण्डाण्ड का अधः भाग मूलाधार या अरध है, जहाँ सुषुप्त कुण्डलिनी अवस्थित रहती है, उसे साधक क्रियाशील करके ऊर्ध्वगमन कराते हुए उरध या ऊर्ध्वस्थ सहस्रदल कमल, ब्रह्मरंध्र में प्रतिष्ठित कराता है। अथवा अरध में स्थित बिन्दु या सूर्य को उरध या नाद में समागम कराता है। अतः अधोस्थिति को ऊर्ध्वस्थ करा देना ही अरध-उरध साधना है। परम्परा में गोरख-कबीर आदि के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अरध उरध बजार मंड्या,
गोरख करै बिचार।
—गो० बा० पद ३७

चौपड़ माहीं चौहटे,
अरध उरध बाजार।

कहै कबीरा रामजन,
लेलौ सब्द बिचार ।

—क० ग्रं० १/३१

अरधे उरधे माठी रोपिन्ह,
लै कसाव रस गारी ।

—क० बीजक, शब्द १२

कबीर कहते हैं कि अरधा-उरधा गंगा यमुना है—

अरध उरध की गंगा जमुना,
मूल कवल कौ घाट ।

—क० ग्रं० पद १८

उन्मनी अवस्था—

उन्मनी और मनोन्मनी शब्द समानार्थी हैं। ये शब्द-साधना की उस दशा को संकेतित करते हैं जिसमें सुषुम्ना मार्ग से संचरित होते हुए मन की दशा स्थिर हो जाती है। साधन की यह दशा उन्मनी कहलाती है—

यो मनः सुस्थिरीभावः
सैवावस्था मनोन्मनी ।

—ह० प्र० २/४२

कबीर ने विरहिणी जीवात्मा की उन्मना अवस्था अथवा मन के लिए इस दशा का उल्लेख किया है—

हँसै न बोलै उन्मनी,
चंचल मेल्ह्या मारि

कहि कबीर भीतर भिद्या,
सतगुरु के हथिमारि ॥

—क० ग्रं० १/९

मन लागा उनमन्न सों,
गगन पहूँचा जाइ ।
देख्या चंद बिहूँणा, चाँदिणा,
तहाँ अलख निरंजन राइ ।

५/१५

अवधू मेरा मन मतिवारा ।
उन्मनि चढ़ा गगनरस पीवै,
त्रिभुवन भया उजियारा ॥

क० ग्रं० पद ७९

उलटी गंगा—

कबीर ने इड़ा या गंगा के प्रवाह को अवरुद्ध करने के अर्थ में उलटी या उल्टी गंगा शब्द का प्रयोग किया है। यह नाथयोगियों में उलटी साधना (क० ग्रं० पृष्ठ १२०) नाम से जानी गई है। इस साधनाभ्यास से नाड़ी का अधोगामी प्रवाह अवरुद्ध करना ही उलटी गंगा बहना या बहाना बताया है—

उलटी गंग नीर बहि आया,
अमृत धार चुवाई ।

—क० ग्रं० पद ७४

उलटी गंग समुद्रहि सोखै,
ससि हर सूर गरासै ।

वही पद १६२

शुचिता की आवश्यकता

श्रीमती सरिता भारद्वाज सांख्ययोगाचार्य

योग के आठ अंगों में यम प्रथम अंग है, जिसके अन्तर्गत अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य का समुदाय है। यम की साधना सार्वभौम महाव्रत है जिसे विश्व के सभी मानव धर्म, जाति, सम्प्रदाय भाषा तथा भौगोलिक सीमा के बिना पालन कर पाते हैं, यम की साधना कर लेने से योगी समाधि से जब नीचे उतरता है तो भी व्युत्थान दशा में जिस भूमिका पर वह रहता है वह भूमिका भी पापकर्म के संस्कारों से रहित होती है—क्योंकि उसकी यम नियमों की साधना ने ऐसा कोई छिद्र नहीं छोड़ा होता जहाँ से क्लेश कर्मों के संस्कार प्रवाहित हो सकें। यम की साधना के पश्चात् नियमों की साधना है। नियम योग का द्वितीय अंग है। योग सूत्र में भगवान् पतंजलि नियमों की गणना इस प्रकार करते हैं—"शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः।" २/३१ / शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर समर्पण ये पाँच नियम हैं। यमों की अपेक्षा नियमों की साधना लक्ष्य तक पहुँचाने में अपेक्षाकृत शीघ्र सहायक होती है। क्योंकि अपने जीवन में योग के किसी एक अंग की ही पूर्णता के साथ साधना कर ले तो वह अंग ही सम्पूर्ण योग का फल देनेवाला बन जाया करता है। क्योंकि अंग में अंगी सन्निहित होता है। साधक के जीवन में शौच अर्थात् पवित्रता की धारणा हो जाय तो यह साधना उसे कैवल्य धाम तक पहुँचा सकती है। भगवान् पतंजलि ने इस बात का संकेत निम्नलिखित शास्त्र में दिया—

'सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति'।३

प्रकृति और पुरुष का मिला हुआ स्वरूप अलग-अलग हो जाय, दोनों अपने शुद्धस्वरूप में आ जावें तो शुद्धि से योगी कैवल्य लाभ करने में समर्थ होता है। पुरुष बुद्धिसत्त्व के क्लेशकर्मवासना भोग से मुक्त होकर निर्मल ज्योतिस्वरूप हो जाता है तथा प्रकृति भी पुरुष के भोग से उपरत हो जाने पर फिर भोग-साधनरूप दृश्य उपस्थित नहीं करती। इस प्रकार पुरुष के प्रतिबिम्ब से वह भी रहित होकर अपने कारणरूप में आ जाती है, यही सत्त्व शुद्धि है। दोनों ही शुद्ध स्वरूप में होते हैं अतः ईश्वर और अनीश्वर दोनों की साम्यावस्था हो जाती है। इससे प्रकृति और पुरुष दोनों की पूर्ण अस्मिता में मुक्ति हो जाती है। विवेक ज्ञान होने पर अज्ञान निवृत्त हो

जाता है। अज्ञान के दूर होने पर क्लेशमूलक कर्मविपाक का भी अभाव हो जाता है। दोनों की स्वतन्त्र स्थिति एक जैसे होती है वही सामान्यता है और उनका वनाव होजाता है, अवधूत दत्तात्रेय ने दोनों के संयोग और वियोगावस्था का सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा विवरण किया है :—

'मशकः उदुम्बरे इषीका ,
मुंज मत्स्याम्भसा यथा।
एकत्वेऽपि पृथग्भावः ,
तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप ॥
भा० पु० २६

जैसे गुलर में कीड़े मुंज में सींकें तथा जल में मछली एकीभाव से रहकर भी एक दूसरे से अलग हैं, इसी प्रकार पुरुष (आत्मा) तथा प्रकृति (क्षेत्र) अलग-अलग हैं।

शौच भावना दृढ़ होने से सन्तोष अर्थात् पदार्थों की अनित्यता समझकर उनके प्रति आसक्ति की उपलब्धि हो जाती है। सन्तोषकर तृष्णा के नाश के लिये आत्म संशोधन का उदय हो जाता है तथा उससे स्वाध्याय होने लगता है। स्वाध्याय के परिणामस्वरूप परम गुरु ईश्वर को सर्व कर्म समर्पणरूप ईश्वर प्रणिधान होता है जिससे निर्विघ्न कैवल्य लाभ प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की कृपा से योगी सदा मोक्षयुक्त होता है।

शुद्धि की भावना से मनुष्य का देहाभ्यास छूट जाता है। देह और गेह की ममता ही दुःख का मूल है।

'ममेति मूलं दुःखस्य,
न ममेति निर्वृतिः।
भा० पु०

अवधूत दत्तात्रेय जनकों को दुःख का स्वरूप समझाते हैं कि मेरी देह, मेरा घर-यह मेरा-मेरा ही दुःख की जड़ है, मेरा नहीं की भावना ही सुख का मूल है। जैसे बिल्ली घर में आकर चूहे खाती है तो हमें दुःख नहीं होता किन्तु वह बिल्ली हमारी पालतू चिड़िया या मुर्गी को खा लेती है तो हम लाल-पीले हो जाते हैं। ममता रूपी अंकुर से ही अज्ञानरूपी महावृक्ष उत्पन्न होता है। घर, द्वार, जमीन उसकी ऊँची-ऊँची शाखायें हैं तथा स्त्री पुत्रादि उसके पत्ते हैं, पुण्य पाप उसके फूल तथा सुख दुःख उस के बड़े फल हैं मोह सम्बन्ध वृक्ष को रक्षा करने वाला माँसला है, यह वृक्ष बढ़कर मोक्ष-मार्ग को ढक रहा है। भ्रान्तिवश जो अनित्य अशुचि इस अविद्यातरु का आश्रय लेता है उसे शान्ति तथा शीतल छाया कहाँ से मिल सकती है?

अतः—

"यस्तु सत्संग पाषाणे
शितेन ममता तरुः।
छिन्नोऽत्रिया कुठारेण
ते गतास्तेन वर्त्मना ॥
भा० पु०

विचार रूपी कुठार को सत्संग रूपी पत्थर से तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को उससे

छेदन करने में समर्थ होने वाले जिनसे पुरुष ब्रह्म के पद को प्राप्त कर सकते हैं, वह ब्रह्म-पद शीतलता तथा शान्ति प्रदान करने वाला निष्कण्टक मार्ग है।

शौच भावना से ममता का नाश होता है, शौच निष्ठा का परिणाम बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं :—

शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्गः ।
२/४०

अशुचि, अपवित्रता का साक्षात्कार होने पर अपने शरीर में आसक्ति नहीं रहती, शरीर की आसक्ति से व्यक्ति उसको सजाने, सम्हालने उसे ठीक रखने के लिए धन और समय ही खर्च नहीं करता, न जाने कितने अनर्थ भी करता है। शरीर को बारम्बार धोने, सम्हालने पर भी वह मल, पित्त, कफ, मलमूत्र, पीप के विकारों से भरा रहता है। निरन्तर क्षीण होता रहता है। जिन्हें विवेक हो जाता है वे इस अपवित्र शरीर के लिए चिन्ता-रहित हो जाते हैं। शरीर की शुद्धि करते-करते भी वह दुर्गन्धि और रोगाणुओं का घर बना रहता है, यह समझकर योगी लोग शरीर पर गर्व नहीं करते न अंगों की सुन्दरता पर मुग्ध होते हैं। शरीर शुद्धि होने से अनासक्ति हो जाती है। किसी का सुन्दर शरीर रूप देखा, उसके पीछे दीवाने हो जाते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व दाँव पर लगा देते हैं। ग्रीक साहित्य तो क्लियोपेट्रा जैसी सुन्दरी नारियों को प्राप्त करने के लिए किए गये युद्धों के वर्णनों से भरा है। शरीर में दोष दर्शन होने लगे तो किसी के शरीर में आसक्ति नहीं होती। जब सुन्दर शरीर प्राप्त नहीं हो पाते तो कुछ लोग आत्महत्या तक कर लेते हैं तथा कुछ सुन्दरियों की हत्या तक कर देते हैं। शौच भावना के विकास से दूसरों के शरीर में भी आसक्ति नहीं होती। किसी को चाटना, चूमना या उसके शरीर की निन्दा या प्रशंसा करना भी नहीं अच्छा लगता। स्त्री हँसती है तो उसकी मुस्कान या उसके दाँतों पर साधक आसक्त नहीं होता क्योंकि दाँत यथार्थ में हड्डी से भिन्न कोई अन्य पदार्थ नहीं है, नेत्रों की सुन्दरता भी कोई आसक्त होने वाली चीज नहीं है क्योंकि वह भी वसा का विकार है। उनके स्तन माँस पिण्ड मात्र हैं तथा उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग मलमूत्र वसा अस्थि माँस से भिन्न कुछ नहीं हैं। इस प्रकार शुद्धता का बोध होने पर दूसरे शरीरों के प्रति मोह भी नष्ट हो जाता है।

बाह्यशौच के अभ्यास के बाद जब अन्तःशौच का अभ्यास हो जाता है, भीतर की शुद्धि से चित्त के रागद्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तो :—

'सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यत्वानि च।'

२/४१

चित्त के मल नष्ट होने पर सतोगुण का विकास होता है जिससे स्वतः आनन्दानुभूति होती है आनन्दमय चित्त रहने से 'गीता' में प्रतिपादित—

'प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते'

तथा

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते

सिद्धान्तानुसार विक्षेपों का अभाव हो जाता है जिससे बुद्धि एकाग्र हो जाती है। एकाग्रता से प्रत्याहार एवं इन्द्रिय जय या आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

यम सार्वभौम महाव्रत कहे गये हैं क्योंकि वे प्रत्येक देश प्रत्येक काल तथा प्रत्येक अवस्था में नियत रूप से सभी के द्वारा निभाये जा सकते हैं। यम आन्तरिक चेतना से अधिक जुड़े हैं किन्तु नियम बाह्य तथा आन्तरिक दोनों विधानों से युक्त हैं तथा प्रवृत्ति परायण के लिए अधिक उपयोगी हैं। योगसूत्रों के व्याख्याकार नागोजीभट्ट का मत है कि—

'यम नियमयोः यमानां निवृत्ति रूपत्वेन शक्यसम्पादनत्वेन त एव परमहंसानामावश्यकाः। नियमास्तु प्रवृत्ति रूपतया योगान्तरायत्वेन नावश्यकाः।' 'यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित्'।

'इति स्मृतेश्च'

यम निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने वाले हैं। अतः परमहंस जीवनमुक्तों को उनका पालन आवश्यक है। नियम प्रवृत्ति मार्ग में ले जाने वाले होने से योग के अन्तराय बन जाते हैं अतः आवश्यक नहीं है। अपने मत का उपन्यास करते हुए नागोजी भट्ट ने अन्त में स्मृति वाक्य को उद्धृत किया है। जिसका आशय है कि यमों को अनिवार्यता से पालन करना चाहिए, नियमों को कहीं-कहीं पालन करना चाहिए। नियमों के विषय में मार्कण्डेय पुराण में भी यह व्यवस्था दी गई है कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति को नियम आवश्यक है और वे नियम हैं :—

सत्यं शौचम् अहिंसा
च अनसूया तथा क्षमा।
आनृशंस्यम् अकार्पण्यं
संतोषश्चाष्टमो गुणः॥

सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशंसता, अकृपणता, ये आठ नियम सभी

वर्णाश्रमों को पालन करना चाहिए। महाराज मनु ने उपनयन के बाद शुचिता की शिक्षा सर्वप्रथम आदेश दिया है:—

'उपनीय गुरुः शिष्यं
शिक्षयेत् शौचमादितः।'

शरीर शुद्धि से लेकर मनःशुद्धि, ऐन्द्रिय शुद्धि, बालशुद्धि, स्थानशुद्धि, भूतशुद्धि, भाषा शुद्धि, मन्त्रशुद्धि, अर्थशुद्धि, शब्दशुद्धि आदि सभी प्रकार की शुद्धता सिखाने का संकेत इस वाक्य में किया गया है। शौच में शुद्धता के साथ पवित्रता का भाव भी सन्निहित है। कोई वस्तु शुद्ध होते हुए भी पवित्र नहीं हो सकती तथा पवित्र होने पर भी अशुद्ध हो सकती है। जैसे शौचालय फिनायल से धोकर साफ कर दिया जाय तो वह साफ तथा शुद्ध तो हो गया किन्तु वहाँ बैठकर भोजन नहीं किया जा सकता। क्योंकि शुद्ध होते हुए भी वह स्थान पवित्र नहीं है। पवित्रता की भावना कर्म के द्वारा आती है। शौचालय में शौचकर्म की भावना के कारण शुद्ध होने पर भी वह पवित्र नहीं कहा जा सकता। शौच भावना का विकास होना चाहा अत्य सभी कल्याण है अन्यथा मिट्टी से इतने बार हाथ धोना, एक बार बाईं ओर कुल्ला करना फिर दाईं ओर कुल्ला करना आदि आचार संहिता के विधानवाद में उलझकर साधक रह जाता है जो जल गड्ढे में गिरकर रह जाता है वह सड़ने लगता है। जो सतत् प्रवाहित होकर आगे चलता चला जाता है वह अनन्त जल-राशि का अंग बन जाता है। वस्तुतः शुचिता के मूल में यही सिद्धान्त है कि अंश पूर्ण में मिलने पर पवित्र हो जाता है। जूठा जल यदि बहती हुई नदी में फेंक दिया जाय तो नदी के जल के संयोग से वह भी शुद्ध जल बन जाता है। शौच के अभाव में व्यक्ति शोक ग्रस्त होता है। शुचिता की कमी ही शोक है। गन्दगी साफ भी न हो जाय तो गन्दगी से रोग होकर शोक होगा। मन में राग-द्वेष की शुद्धि न हुई तो परिणाम शोक होगा। शूद्र वही है जो शुचिता से अलग है। जिसमें शुद्ध रहने की वृत्ति नहीं है वही शूद्र माना जाता है। जो संस्कारों के द्वारा शुद्ध हो पवित्र हो जाता है, जैसा था, उससे शुद्ध हो जाता है वह द्विज कहलाता है। शूद्र में देह-धन-गेह तथा अहंकार का अधिक बोध होता है। फलस्वरूप उसके जीवन में शोक और दुःख अधिक रहता रहता है। जो विवेक वैराग्य से शुद्ध हो जाता है वह ब्राह्मण कहलाता है। उसके जीवन में संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-शरणागति की वृत्ति सहज हो जाती है। भारतीय समाज में छूत-छूत का विकृत भाव अज्ञान और पाखण्ड के कारण फैल गया है। सात्विक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन-यापन करने वाले में ही

अस्पृश्य की निष्ठा सात्विक होती है बाकी सब पाखण्ड करते हैं। अपनी साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर आध्यात्मिक पुरुष भी

'शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः

(गीता)

कुत्ते और चाण्डाल को एक रूप से देखते हैं। यह स्थिति अनासक्ता के परिणामस्वरूप पैदा होने पर बोध बन जाती है।

झूठहि लेना, झूठहि देना।
झूठे भोजन, झूठ चबेना॥

यह कलियुग का धर्म बन गया है। अभक्ष्य भोजन करने में हम लोग गौरव का अनुभव करते हैं।

'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।,

आहार शुद्धि से मन शुद्ध होता है तथा बुद्धि शुद्धि से स्मृति का उत्थान होता है जिससे पूर्वजन्मों का साक्षात्कार होकर संस्कारजन्मों का समस्त चक्र काटने में साधक समर्थ होता है। अतः योगाभ्यास करने वाले साधक को पवित्रता से बनाये हुए अपने इष्ट को भोग लगाकर 'सात्विक' भोजन को पवित्र स्थान पर बैठकर शान्त तथा प्रसन्नचित्त से करना चाहिए जिससे चित्त की चंचलता दूर हो। भोजन शुद्ध और सात्विक हो तथा हिंसा तथा अन्याय से प्राप्त न हो तभी आहार शुद्धि होगी। प्राणायाम, आसन, मुद्रा, बन्ध तथा जप से शरीर तथा मन की शुद्धि होती है तथा धारणा, ध्यान, समाधि से बुद्धितत्व की शुद्धि होती है।

शौच निष्ठा का अभ्यास होने पर साधक को पवित्र आत्माओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार —

शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टोऽभिजायते।,

शुचितामय वातावरण में योगी जन्म लेते हैं। महात्माओं का जीवन पवित्र होता है उनके यहाँ योगभ्रष्ट जन्म लिया करते हैं। शौच भावना की पवित्रता, निरभिमानिता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, स्थिरता तथा आत्मनियन्त्रण द्वारा ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

'आचार्योपासनं शौचं
स्थैर्यमात्म विनिग्रहः।'

१३/७

शौच भावना को दैवी सम्पत्ति में परिगणित किया गया है। दैवी सम्पत्ति सम्पन्न साधक मोक्ष पद पर आरूढ़ हो पाता है।

'तेजः क्षमा धृतिः शौचम्
अद्रोहो नाति मानिता।

भवन्ति संपदं दैवीम-
भिजातस्य भारत ॥
गीता १६/३

आसुरी प्रकृति के व्यक्तियों में न शौच होता है न आचार तथा जीवन में सत्य व्यवहार होता है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च-
जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो-
न सत्यं तेषु विद्यते ॥
१६/७

भगवान श्रीकृष्ण ने शौच को शारीरिक तप कहा है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ-
पूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च
शारीरं तप उच्यते ॥
१७/१४

देव, ब्रह्म, गुरु तथा विद्वानों का पूजन, शुचिता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का पालन शारीरिक तप कहा गया है।

'तपसा चीयते ब्रह्म' ।

तपस्या के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ब्रह्म की अनुभूति करने वाले अर्थात् ब्राह्मणों के स्वभाव में ही शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान-विज्ञान एवं तथा ईश्वर में विश्वास होता है।

''शमोदमस्तपः शौचं-
क्षान्तिरार्जवम् एव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं-
ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥
१८/४२

शौच के सामान्य उपाय

''अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति-
मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा-
बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥,

जल और मिट्टी से शरीर शुद्धि होती है। मन की शुद्ध सत्य भाषण से होती है। विद्या तथा तप से भूतों की शुद्ध होती है तथा बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है।

मलमूत्र त्याग करने के पश्चात् शुद्धि आवश्यक है। दिन में उत्तर दिशा की ओर तथा रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर तथा दोनों सन्ध्या में उत्तर की ओर मुँह करके मलमूत्र त्याग करें। मलमूत्र त्याग कर गुदा और मूत्रेन्द्रिय को मिट्टी तथा जल से शुद्ध करें। तत्पश्चात् बाल बार दोनों हाथों को मिट्टी से साफ करें। साबुन से हाथ धोने पर दुर्गन्ध नहीं जाती तथा नाक, कान तथा दांतों के रोग हो जाते हैं। समस्त रोगों का

मूल पृथ्वी है

'गन्धवती पृथिवी'।

अतः मिट्टी हाथ से धोना चाहिए। पैरों को धोना भी आवश्यक है जिससे सिरो रोग न हों। मलत्याग के बाद बारह बार कुल्ला करें। भोजन के बाद सोलह बार तथा मूत्रत्याग के बाद चार कुल्ले करें। जिह्वा को खींचकर मलने से जिह्वा शुद्ध होती है। हाथ में अंगूठे से रगड़कर मुख के ऊपरी भाग तथा तालु की शुद्धि करें।। बबूल या मौलश्री तथा नीम की दातुन से दांतों की शुद्धि होती है। टुथपेस्ट से जिह्वा तथा मुख में स्थित कफाशय के सूक्ष्म जन्तु शुद्ध नहीं हो पाते जिससे उदर रोग हो जाते हैं।

स्नान से शरीर शुद्धि करनी चाहिए। बाहरी जल का स्नान बाह्य शरीर को शुद्ध करता है तथा मानसिक स्नान योगियों को पवित्र करता है। इड़ा पिंगला तथा सुषुम्णा नाड़ियां गंगा, यमुना, सरस्वती नदियां हैं। जिनका संगम आज्ञा चक्र में होता है। उसमें ध्यान करने से योगी का स्नान होता है। तथापि ठंडे जल से स्नान करें। स्नान के समय पवित्र होने की भावना को दृढ़ करता जाय। स्नान के बाद आचमन तर्पण (मंत्र-पूर्वक) प्राणायाम तथा मन्त्र जप ध्यान करने से सम्पूर्ण शुद्धि होती है। नेति, धोति, नौली, बस्ती कपालभाति तथा त्राटक की भी क्रियाओं से नाड़ी शुद्धि होती है। राजयोग के द्वारा भी मनोलय के साथ प्राणलय होने पर इन क्रियाओं के बिना ही नाड़ी शुद्ध हो जाती है। सूत्र, जल, दुग्ध, तथा घृत, नेति, वाग्धार, कुंजल तथा कर्णों के अभ्यास से शरीर के दोषों से शुद्धि होती है जिससे चित्त प्रसादयुक्त बनता है।

देवता का पूजन तथा गुरुसेवा मन तथा शरीर शुद्धि के बाद ही करनी चाहिए। शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि जो मलिन रह कर देव कार्य करता है उसका वंश नहीं चलता।

निर्बीजत्वं नरो याति
नारी वा शौच वर्जिता।

-मार्कंडेय पु०

शौच के नियमः—

चक्षुः पूतं चरेन्मार्गं
वस्त्रपूतं जलं पिबेत्
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं
मनः पूतं समाचरेत्॥

-लिंग पुराण

मार्ग में भलीभांति देखकर चलें तथा वस्त्र से छानकर जल पियें सत्य वचन पवित्र होते हैं तथा सोच-विचारकर किया गया कार्य

पवित्र होता है। अपवित्र अन्न खाने पर पाँच सौ बार अघोरमन्त्र का जाप करने से शुद्धि होती है। लिंग पुराण

गुरु द्रोह के पातक की शुद्धि एक करोड़ प्रणव जप से होती।

'तीर्थोदक वह्निश्च
नान्यतः शुद्धिमर्हति।'
—कालिदास

तीर्थों का जल तथा अग्नि स्वयं ही पवित्र है तथा दूसरों को पवित्र करने वाले हैं अतः इनके सेवन से सारे पातकों की शुद्धि हो जाती है।

वस्त्रों की शुद्धि:—

रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों की शुद्धि स्वच्छ वायु से होती है। अल्सी वस्त्रों (क्षौम) की शुद्धि सफेद सरसों से, छाल कम्बलों की शुद्धि ऊष्मा से अन्य प्रकार के वस्त्रों की शुद्धि जल से होती है।

वस्तु शुद्धि

वस्त्र, माला, आसन और पोथी अपनी ही प्रयोग में लावें। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के परमाणु उनकी वस्तुओं में साथ लग जाते हैं। अपने काम में आने वाली वस्तुओं को पवित्र कर ही प्रयोग में लाना चाहिए। कांसे का पात्र भस्म से, लौह पात्र क्षार से, ताम्र पात्र खटाई से रांगा और शीशे का पात्र भी खटाई से शुद्ध होता है। सोने और चांदी का पात्र जल से धोने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। धातु पात्र दूषित होने पर अग्नि में तपाने से शुद्ध हो जाते हैं।

तृण तथा काष्ठादि वस्तुओं की शुद्धि पवित्र जल के द्वारा होती है। यज्ञपात्रोंसींग, अस्थि, दांत आदि के बने पात्रों की शुद्धि छिलाई कर देने से होती है। अन्न भी कुशा-जल से प्रोक्षण करने पर शुद्ध हो जाता है। शाक, मूल तथा फलों की शुद्धि भी कुशा द्वारा जल मार्जन से होती है। घर की शुद्धि गाय के गोबर से लेप करने पर होती है। गाय की प्यास बुझ जाय इतना जल यदि भूमि में हो तो वह शुद्ध माना जाता है। धोबी के यहां से धुल कर आये वस्त्र कुशाजल के प्रोक्षण से पवित्र होते हैं। शयन, भोजन, जमाई, पेय पदार्थ पीकर थूककर जल से आचमन करने से मुख की शुद्धि होती है।

कौवा, कुत्ता, सूअर, गधा, चाण्डाल, मुर्दा आदि का स्पर्श होने पर तथा मैथुन के पश्चात् स्नान करने से शुद्धि होती है। रजस्वला तथा सूतिका स्त्री तथा अन्त्यजा स्त्री का स्पर्श होने पर स्नान से शुद्धि करनी

चाहिए। केवल ब्राह्मण की शुद्धि दस दिन में हो जाती है अन्य असगोत्र वाले व्यक्तियों को सूतक तथा मातृक अशौच में चतुर्थ दिन में शुद्धि होती है। जो कुटुम्बी हैं। उनकी शुद्धि ग्यारहवें दिन के पश्चात् स्नान करने से होती है। छः महीने के बाद तीन वर्ष पर्यन्त तक मरने का पता चले तो तीन रात्रि का अशौच होता है।

सूतिका अशौच दस दिन तक माता को होता है तथा पिता को तीन रात्रि का अशौच होता है। अशौच सात पीढ़ी तक सपिण्डता होने पर एक ही गोत्र के लोगों को होता है। एक वर्ष के बाद अशौच का समाचार मिले तो स्नान करने से शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी का दाह कर्म करने पर वस्त्र सहित स्नान करने से उसी दिन शुद्धि हो जाती है। श्मशान यात्रा में सम्मिलित होने पर स्नान कर घृत का प्राशन करने से शुद्ध हो जाता है। आचार्य और गुरु के मरने पर तीन रात्रि अशौच माना है। मामा के मरने पर तीन रात्रि का अशौच होता है।

यह शौचाशौच विचार गृहस्थों के तथा ब्रह्मचारियों के लिए विशेषरूप से पालन करना चाहिए। शास्त्रकारों का कहना है कि यतियों, संन्यासियों तथा विरक्तों को ये नियम पालन करना अनिवार्य नहीं है।

'अशौचं नानुपूर्वेण
पतीनां नैव विद्यते।'
-लिंगपुराण

स्त्रियों को शौचाचार का अधिक ध्यान चाहिए। रजस्वला स्त्रियों को सम्भाषण, स्नान, गान, रोदन, अट्टहास, सवारी में जाना, काजल लगाना, ताश आदि खेलना, दिवाशयन, क्रीम पाउडर लगाना, दन्त धावन, मैथुन तथा दातुन करना वर्जित है। रजो दर्शन के प्रथम दिन स्त्री चाण्डाली के समान, द्वितीय दिन ब्रह्म घातिनी के समान तथा तीसरे दिन धोबी अशुद्ध होने से स्पर्श योग्य नहीं होती तथा अशुद्ध मानी जाती है। चौथे दिन स्नान करके भी पन्द्रह दिन तक रज की अशुद्धि विद्यमान रहती है। अतः रजस्वला को देवार्चन और नमस्कार के कार्य नहीं करने चाहिए उसके सम्भाषण तथा अंग स्पर्श से रजस्वला के दोष आ जाते हैं। शुद्धि स्नान के बाद स्त्री को परपुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिए। सर्वप्रथम भगवान भास्कर के दर्शन कर पंचगव्य अथवा दुग्ध पीकर आत्म शुद्धि करे।

इसी प्रकार मन शुद्धि चतुर्थ धर्मकार्य करने से होती है। श्रीमद्भागवत में सब प्रकार की शुद्धि के निम्न उपायों का उल्लेख है।

कालेन स्नान शौचाभ्याम्
संस्कारैः तपसेज्या ।

शुद्धयन्ति दानैः सन्तुष्टयां
द्रव्याण्यात्मविद्यया ॥

१०/५/४/३०

गर्भ शुद्धि संस्कारों से, भूमि, भूतल जल आदि की शुद्धि समय पर स्वतः शरीरादि की शुद्धि स्नान से, इन्द्रिय मन की शुद्धि तपस्या से ब्राह्मणादि की यज्ञ से, धन धान्य की शुद्धि दान से, सन्तोष से मन की तथा आत्मज्ञान से आत्मा की शुद्धि होती है।

जो ब्रह्मनिष्ठ युक्त योगी तथा ध्यानी हैं वे स्वर्ण के समान सदा निलिप्त तथा शुद्ध होते हैं अतः विशुद्धों की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे कि विष्णु पुराण में कहा गया है—

योगध्यानैकनिष्ठाश्च
निर्लेपाः काञ्चनं यथा ।
शुद्धानां शोधनं नास्ति
विशुद्धा ब्रह्म विद्यया ॥

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि जिस का लोटा सोने का है उन्हें उसे मांजने की जरूरत नहीं है किन्तु जिनका पीतल का है उन्हें प्रतिदिन उसे साफ करना चाहिए। उसी तरह जो समाधिनिष्ठ नहीं हुए उन्हें स्वयं के लिए तथा लोक मर्यादा के लिए इनका पालन करना चाहिए।

(पृष्ठ ५२ का शेष)

उलटी गंग मेर कू चली ।
—वही पद १२८

औंधा कुआँ—

सन्त-वाणियों में अधोकूप, उरध कूप, उलटा कुआँ, औंधा कुआँ, गगन कूप, इंद्रकूप कूप, दसवाँ दुआर आदि शब्दों द्वारा ब्रह्मरन्ध्र या ब्रह्मद्वार के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए शब्द हैं। हठयौगिक परम्परा में ऐसा प्रतिपादन है कि पिण्ड के शिरोभाग में, जिसे ब्रह्माण्ड या गगनमण्डल भी कहा जाता है, एक सूक्ष्म छिद्र है जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते है। इसका मुख नीचे की ओर रहता है, इस लिए इसे अधः कूप या औंधा कुआँ कहते हैं। इसमें अमृत तत्त्व का निवास रहता है। साधक सुषुम्नामार्ग से प्राण-शक्ति को ऊर्ध्वस्थ करता है। इस साधना प्रक्रिया में गुरु का अनुशासन सहायक बना रहता है। कबीर ने इस शब्द का प्रयोग गोरखनाथ के परवर्ती रचनाकार के रूप में किया है—

आकासे मुखि औंधा कुवाँ,
पाताले पनिहारि ।
ताका पाणी को हंसा पीवै,
बिरला आदि बिचारि ॥
—क० ग्रं० ४/४५

आश्रम सेवा बनाम गुरु सेवा

डा० श्री विजयसिंह

हम महर्षियों और राजर्षियों की सन्तान हैं। धर्म प्रधान, कर्म प्रधान, ज्ञान प्रधान शाखाओं से युक्त अथवा तेजस्वी था उन ऋषि गणों का हुआ करता था जो जन संकुल से दूर जंगलों के अन्दर किसी पवित्र हिम सरिता के कूल पर पर्णाच्छादित कुटीरों में आश्रम स्थापित कर रहा करते थे। उनका जीवन ब्राह्मि रूप में समाधि के परमानन्द में निमग्न रहता था तथा वे प्रकृतस्थ अवस्था में अपने ब्रह्ममय तेज से ब्रह्ममय समाज की संरचना किया करते थे। तेजस्वी पूर्ण आस्तिक ब्रह्मचर्यशील मानव की संरचना इन्हीं आश्रमों में हुआ करती थी। वे साक्षात ईश्वर तुल्य थे। समाज के प्रबुद्ध जन अपने आपात कालों में उन ऋषि गणों के सान्निध्य एवम सहयोग से कालजाल में सहज ही छेद किया करते थे। योग की पराकाष्ठा को प्राप्त महर्षियों में कर्तुं म अकर्तुं म अन्यथा कर्तुं की सामर्थ्य रहा करती थी। ब्रह्मबोध हेतु ब्रह्मचारी तथा ऐसे महापुरुषों की शरण-शरण को ग्रहण करते थे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अथवा लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से लेकर शिवाजी महाराज तक सभी ने समर्थ योग सद्गुरु की कृपा तथा उनके सिद्धशक्ति से सर्वदा पूर्ण रहने वाले आश्रमों से प्रेरणा प्राप्त की थी।

युग के परिवर्तन के साथ पावनता भेद के कारण धीरे-धीरे ऐसे समर्थ पुरुषों तथा सद्पात्रों का अभाव होता गया जिससे आश्रमों के स्वरूप भी बदलते गये। परन्तु नासतो विद्यते भावः, इस सिद्धान्त से किसी वस्तु का पूर्णतया अलोप नहीं हुआ करता। आज भी ऐसे सिद्ध पुरुष एवं उनके सिद्धाश्रम भारत भूमि में हैं तथा कलि के कठोर बन्धन से पीड़ित लोग ऐसे आश्रमों में जाकर भौतिक, दैहिक, आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान पाते हैं। आश्रम वही है जहाँ की पवित्रता अथवा शुद्धता ही मनुष्य को मन की शान्ति प्रदान करती है। गत दिनों कुछ विदेशी जिज्ञासु पर्यटक हमारे अपने आश्रम 'श्री सिद्ध गुफा' के दर्शनार्थ आये। उन दिनों श्री सद्गुरु भगवान योग प्रचारार्थ आश्रम से बाहर गये हुए थे। वे पर्यटक कुछ पहर आश्रम में रहे तथा भोजन प्रसाद का ग्रहण कर जब जाने लगे तो उन्होंने स्वयं इस बात का इजहार किया कि यह भूमि कुछ विचित्र सी है। हमें यहाँ आकर इस अल्प काल में ही मनः शान्ति तथा एक अनिर्वचनीय आनन्द बोध हुआ है।

हम पुनः इस स्थल विशेष में आना चाहेंगे।

इन बातों के अतिरिक्त हम सभी जो ऐसे सिद्धाश्रम से दीक्षा सम्बन्ध द्वारा एक प्रबल प्रेम एवम् आत्मिक कर्त्तव्य बोध से जुड़े हुए हैं, हमारा आश्रम में निवास मर्यादित कैसे हो इसको समझना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में भी सद्गुरु भगवान जी ने कभी ऋषिकेश में कुछ मूलभूत बातें उपस्थित शिष्यों को उपदेशित की थीं। उन उपदेशों के संदर्भ में हम कुछ बातें यहाँ लिखते हैं।

एक बार ६-७ वर्ष का बालक 'श्री सिद्ध गुफा' के आंगन में खेल रहा था। उसके माता पिता गुरु सेवा व्रती साधक थे। उस बालक ने बताया कि देखो यहाँ क्या हो रहा है? सारा आश्रम चमचम चमकते मोतियों से भरता जा रहा है। हम सभी जो यहाँ हैं मानो प्रकाश रश्मियों में डुबकी ले रहे हैं। वह देखो आश्रम में आता हुआ व्यक्ति भी इस ज्योति द्वारा ढक लिया गया है। यह उसका प्रत्यक्ष अनुभव था।

दूसरी घटना सवाई ग्राम के ही एक युवक साधक की दिव्यानुभूति सुनने से ज्ञात हुई। वह साधक नित्य ब्रह्म मुहूर्त में नियम से कई घंटे ध्यानाभ्यास में बैठा करता था। एक दिन ध्यानाभ्यास के दौरान उसे तीव्रतर ज्योति दर्शन से चकाचौंध होने के कारण आँखें खोल देनी पड़ीं। उसने देखा आकाश पथ से अनेक ज्योतिर्मंडित दिव्य देहधारी चले आ रहे हैं। सभी ने 'सिद्ध गुफा' की परिक्रमा करते हुए वे पुनः सद्गुरु निवास के समक्ष वंदन करते हुए पुनः आकाश पथ से उत्तर दिशा की ओर ज्योति विकीर्णित करते हुए अलोप हो गये।

जहाँ सिद्ध योगी का वास हुआ करता है वहाँ उनके प्रत्येक क्रिया—कलाप से अनन्त मंगल दिव्य परमाणु निःसृत होकर सारे आश्रम परिवेश को सतोगुणों से आलोकित कर देते हैं। ऐसे दिव्य स्थल पर साधक को सावधान मनःस्थिति से निवास करना चाहिए। जो अपने गुरु मन्त्र का जाप करते हुए सावधानी पूर्वक आश्रम सेवा सम्बन्धी कार्यों को उत्साह पूर्वक करते हुए वे निवास करते हैं उन्हें विलक्षण अनुभूतियाँ स्वयमेव होने लगती हैं।

क्रियात्मिका महाशक्ति सद्गुरु शरीर का आधार पाकर सारे जड़ एवं चैतन्य में व्याप्त होने के हेतु आतुर रहा करती है। जो सतोमय भाव से रहते हैं उनमें तुरन्त साधना का व्यापार उद्भासित होता है। परन्तु जो अमर्यादित ढंग से निवास करते हैं। उनमें वही शक्ति उन्माद, कलह का सृजन कर देती है। अतः आश्रम में निवास उन्हीं का फलीभूत होता है जो सद्गुरु प्रेम से पूरित होते हैं। गुरु की प्रत्येक इच्छा में उसी लोक कल्याण एवम् स्वकल्याण का बोध होता रहता है। आश्रम

में रहते हुए ऐसी तुच्छ करना निन्दा मात्सर्य की चर्चा में समय व्यतीत करने वालों को निरन्तर ही हानि बना करती है।

सद्गुरु अनन्त शक्ति एवम् सम्भावनाओं के भंडार हैं। वे नर तन धारी नारायण हैं। उनके चित में मात्र करुणा का ही उद्रेक है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि जो असद् भाव से आश्रम वास करते हैं उनको क्रिया-त्मिका चिद्शक्ति को जड़ चेतन सब में वास करती है कभी कभी दण्ड देने में भी नहीं चूकती।

अपना आश्रम श्री सद्गुरुदेव भगवान के निर्देश में पुरानी परम्पराओं एवम् नैतिक मान्यताओं के अनुसार चलता है। आध्यात्मिक अनुभूतियाँ को कोई धन अथवा बाह्य पदार्थों से प्राप्त नहीं कर सकता। यह परम विद्या तो मात्र गुरुदेव की सेवा से तथा उनकी प्रस-न्नता से ही प्राप्त किया जा सकता है। आश्रम वासी को आश्रम के प्रत्येक कार्यक्रम में पूर्ण उत्साह के साथ भाग लेना परमावश्यक है। ध्यान, पूजन, योगाभ्यास के अतिरिक्त आश्रम सम्बन्धी प्रत्येक छोटे बड़े कार्यों में अपना सहर्ष सहयोग देना ही आश्रम सेवा है। ऐसा करने से साधक के अन्दर समर्पण एवम् सद्-गुरु प्रेम ज्योति को जागृति हुआ करती है और वह यदि—

मानापमान से मुक्त होकर ऐसी ही तत्-परता से आश्रम-सेवा में लगा रहे तो उसे सद्-गुरु कृपा से योग की परमोपलब्धि हुआ करती है। पौराणिक काल में क्या राजा क्या रंक सभी को आश्रम के अनुशासन में रहकर छोटे बड़े सेवा कार्यों को करते हुए सद्गुरु कृपा प्राप्त करना होता था। अतः यह बात आज भी हमें आश्रम में रहते हुये निभाना चाहिए।

श्री गुरुगीता में योगाचार्य परमगुरु भग-वान शिव शिष्यों को सद्गुरु सानिध्य में क्यों निवास करना चाहिये बताते हैं कि—

'यत्रावतिष्ठते सोऽपि
स देशः पुण्यभाजनः।'

अर्थात् जहाँ सद्गुरु निवास करते हैं वह देश ही पुण्य का कारण बन जाता है, जो साधक गुरु को सन्तुष्ट कर लेते हैं वे सर्वथा मुक्त हैं तथा भोग, मोक्ष एवम् ऐश्वर्य सदा उनके हाथों में है।

गुरौ सन्तोषिते सर्वे,
मुक्तास्ते नात्र संशयः।
भुक्ति-मुक्तिद्वयस्तेषां,
करापे वर्तते सदा॥

परन्तु जो मनुष्य विद्या, धन के मोह से गुरु की सेवा नहीं करते वे मन्द भाग्यवाले हैं। हे देवि! मैं सत्य कहता हूँ। बुद्धिमान शिष्य को कभी भी सद्गुरु से अहंकार पूर्ण

उपेक्षा पूर्वक तथा असत्य नहीं बोलना चाहिए भगवान सदाशिव कहते हैं कि सद्गुरु से परम श्रेष्ठ तत्व और कुछ भी नहीं है। साधक को अधिभूत रूप आसन, शय्या, वस्त्र वाहन भूषणादिक गुरु के सन्तोष हेतु तो अर्पण करना ही चाहिए साथ ही आध्यात्मिक भाव से अपने जीवन का भी अर्पण करना चाहिए।

कर्मणा मनसा वाचा,
नित्यमाराधयेद् गुरुम्।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य,
निर्लज्जो गुरुसन्निधौ।
शरीरमर्थं सम्प्राप्तिं
सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।
कृमि विट् भस्म निष्ठांत,
दुर्गन्ध मल मूत्रकम् ।।

साधक को सच्चे भाव से कर्म से, मन से वाणी से गुरुदेव की आराधना करनी चाहिए। लज्जा रहित होकर गुरुदेव के समीप लम्बे दण्ड के समान पृथ्वी पर लेट कर नमस्कार करना चाहिए। इस शरीर का क्या अभिमान करना जिसका अन्त ही भस्मीभूत होना है। धन और ऐश्वर्य भी कितने दिनका है। अतः इन सभी को सद्गुरु को अर्पण कर देना चाहिए। जिससे स्वतः ही आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसे संसार को धारण करने वाले गुरुदेव को बारम्बार नमस्कार है।

❀ पैज गहै सोई सूरा ❀

साधु, पैज गहै सोई सूरा।
जाके मुख पर नूर है, जब मारू बाजै तूरा ।।
कलँगी जग कत्र शाह बनावे इनका भजन दुहेला।
सावंत भेख बनाय चलत है, यह नहिं सहज सुहेला ।।
या बाने को नेम यही, पग धरि फिर न उठावै।
जो कुछ होय सो आगेहि आगे, आगे ही को धावै ।।
रण में पैठि भड़ाभड़ि खेलै, सन्मुख सस्तर खावै।
खेत न छोड़ै ह्वाँ ही जूझै तबही शोभा पावै ।।
'चरनदास' बाना संतन का दीजे सीस चढ़ावै।

वह योगी है–
जो संसार वृक्ष को जानता है।

— एक साधक

योग सम्पूर्ण मानव के लिए है। यह भी सत्य है कि प्रत्येक मानव अपने संस्कारों तथा अन्तःकरण की विभिन्नता के कारण एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। कोई भाव प्रधान कोई विचार प्रधान होता है। भावों की विभिन्नता एवम् विचारों की प्रौढ़ता की विभिन्नता के कारण हर एक व्यक्ति का अपना अपना व्यक्तित्व हुआ करता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने इसी लिए भगवद् गीता में योग की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न साधन-पथों का उल्लेख करते हैं। भक्त प्रवण हृदय समर्पण योग को सहज समझता है। जो कर्म प्रधान आस्तिक बुद्धि है उन्हें निष्काम भाव से कर्म करना ही भला प्रतीत होता है। जो ऐसा भी नहीं कर सकते उनके लिए अभ्यास योग का अवलम्बन बताया गया है। यह सभी पथ व्यक्ति के अन्तःकरण के बनावट के अनुरूप होने पर सहज साध्य होते हैं। जगत के भौतिकवादी तथा कथित बौद्धिक कहलाने वाले विश्व के अधिकांश ऐसे व्यक्तियों के लिए भी एक बौद्धिक पहेली जगदात्मा ने बुझायी है। जो भी इस पहेली के मन्तव्य को बोध पूर्वक समाधान कर सकेगा वह निश्चित ही योगी बन जायेगा। देखें भगवती गीता का अध्याय पन्द्रह का पहला श्लोक:—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखम-
श्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि
यस्तं वेद स वेदवित् ॥

अर्थात् अश्वत्थ नामक वृक्ष जिसकी जड़े ऊपर है तथा अनेक शाखायें नीचे हैं। जो कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। वेद जिसके पत्ते हैं, ऐसे वृक्ष को जो जान लेता है वह पुरुष सच्चा वेदवेत्ता है।

भगवान ने इस पहेली युक्त श्लोक में बौद्धिक समझे जाने वाले लोगों के लिए परम चिन्तना का विषय तो प्रस्तुत किया ही है इस के अलावा भी इसी तरीके का एक और प्रश्न करते हैं कि बुद्धिवादियो! तुम बताओ और जानो कि इस शरीर से कौन निकल जाता है अथवा इसमें स्थिति रह के कौन धारे बोलो

को भोगता है।—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि
भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।

स्वयं प्रभु कहते हैं इस रहस्य को मूर्ख नहीं जानते केवल ज्ञान चक्षु सम्पन्न लोग ही जानते हैं—

विमूढा नानुपश्यन्ति
पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।

भगवान ने स्पष्ट कह दिया है कि इस सृष्टि के विस्तार रूपी वृक्ष को तथा इसे उत्पन्न करने वाले अव्यय ऐतकी सत्ता को मात्र योगी ही जानता है। शरीर में स्थित जीवात्मा के वास काम की क्रियायें तथा निकलते समय की प्रक्रियाओं को यत्न पूर्वक योगी ही जानता है।

यतन्तो योगिनश्चैनं
पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो
नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

आनन्दकन्द श्री वासुदेव भगवान सर्वदा अपने प्रवचन में साधक शिष्यों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम सभी इतनी साधना करो कि तुम्हें मृत्यु की घड़ी का लगभग समय पूर्व पूर्वाभास हो जाय और तब तीव्र संवेग से ऐसा साधन अनुष्ठान करो कि भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र के बताये हुए दुर्लभ जन्म को प्राप्त कर सको। क्योंकि मृत्यु काल में जिस प्रकार की भावनाएँ घनीभूत होंगी वैसे ही परिणाम का भागी जीवात्मा होगा। जो योग मार्ग पर चलकर इसी जन्म में निर्बीज समाधि नहीं प्राप्त कर पाते ऐसे लोग पूर्व कथित मृत्यु कालीन तीव्र साधना संकल्प से स्वयं ही अपना अगला जन्म योगियों के घर में सुनिश्चित कर लिया करते हैं। वहां उन्हें पूर्व जन्म की साधना का स्मरण स्वयमेव हो उठता है। जिससे शीघ्र ही पूर्ण योग की प्राप्ति के लिये वह सचेष्ट हो जाता है। ऐसा जन्म प्राप्त करना भी कोई साधारण बात नहीं है। स्वयं भगवान कहते हैं—

दुर्लभतरं लोके
जन्म यदीदृशम् ।

अतः मुक्ति वैचित्र एवम् शरीर आत्मा सम्बन्ध के रहस्य को भी सुलझा लेता है। वह परमात्मा तत्व को भी अहंकार रहित हो जान लेता है।

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान
स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।

अर्थात् ऐसा जानकर बुद्धिमान व्यक्ति पूर्ण कृतकृत्य हो जाता है। लेकिन इस कठिन समस्या का समाधान उसे ही प्राप्त हो सकता है जो—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

अनादिकाल से मनुष्य और सृष्टि की छेड़छाड़ चली आ रही है। मानव अपने परिवेश का ज्ञान करते हुए आज भौतिक समृद्धि के पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। परन्तु उपरोक्त भौतिक प्रश्नों का समाधान करना तो दूर रहा, ऐसे प्रश्नों पर आज से कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक विचार भी नहीं करते थे। वैज्ञानिकों के पास सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया अथवा मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व जैसे प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं है। गत कुछ वर्षों से जर्मनी, अमेरिका, रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने इन जटिल भौतिक प्रश्नों के समाधान हेतु सचेष्टा ही खोज में लगे हुए हैं। परन्तु बाह्य अन्वेषण इन सूक्ष्मतम प्रश्नों का समाधान कर सकने में असफल है। इस संदर्भ में परा मनोविज्ञान के अन्तर्गत कुछ प्रयोग हो रहे हैं। सर्व प्रथम मनोविज्ञानवेत्ता कार्ल युग को एक बार ऐसी अनुभूति हुई कि वह अपने शरीर से निकलकर अनन्त में हजारों मील ऊपर उड़ रहा है। उसे यह भी आभास हुआ कि वह चाहने पर इस अशरीरी-शरीर से भी कहीं भी जा सकता है। उसने वैज्ञानिक बाहर को ठीक उसी प्रकार से देखा जैसा लोग जाग्रत अवस्था में देखते हैं। एक वैज्ञानिक ने बतलाया है कि इस अलौकिक अनुभूति ने उसे अन्दर से बहुत कुछ बदल डाला है, उसके मन से मृत्यु भय हट गया है। परन्तु अब भी वैज्ञानिक यह नहीं जानते कि यह मूल चेतना मृत्यु के बाद कहाँ जाती है? यहाँ तक कि एक वैज्ञानिक विलियम मैक्डोगल ने ऐसे विशेष प्रकार की तराजू का आविष्कार किया है जो एक ग्राम का अरबवाँ अंश भी ठीक तौल सकती है। मरणासन्न कई रोगियों पर प्रयोग करके उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि शरीर में सूक्ष्म तत्व जीवन का मूल आधार है।

डाक्टर रेड्स ने एक किरण की खोज की है जो आदमी अपनी आँखों से नहीं देख सकता। परन्तु रसायनों पर उसका प्रभाव है। यह किरण निर्जीव पदार्थों को वेध सकती है परन्तु सजीव पदार्थों से टकराकर लौट जाती है। इनके अनुसार जीवित शरीर में आत्मा ही प्रकाश शक्ति है, जो इन बाह्य सूक्ष्म तरंगों को लौटा देती है।

अमरीका में विल्सन क्लाउड चैम्बर द्वारा आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये गये हैं। यह चैम्बर एक खोखला पारदर्शी सिलेंडर होता है, जिसकी अंदरूनी हवा निकाल दी जाती है और रासायनिक घोल

भेज देते हैं। सिलेण्डर में इससे मंद प्रकाश पूर्ण कोहरा छा जाता। इस कोहरे में से यदि एक भी इलेक्ट्रान गुजरे तो उसकी फोटो फिट किये गये कैमरों में आ जाती है, इस चैम्बर में जीवित चूहे और मेंढकों को रखकर बिजली के करेंट से उन्हें प्राणहीन किया गया और देखा कि मरने के बाद उनकी हूबहू आकृति उस रासायनिक कुहरे में तैर रही थी। उस आकृति की गतिविधियाँ सम्बन्धित प्राणी के जीवन-काल की गतिविधियों के अनुरूप ही होती है। धीरे-धीरे यह सत्ता धुंधली पड़ जाती है और कैमरे की पकड़ से बाहर हो जाती है और धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है।

सोवियत भौतिकविद् डा. एम. बिल्वेलो सर्वप्रथम "जैव-प्लाज्मा" की खोज की है। जैव-प्लाज्मा में आयंस स्वतन्त्र इलेक्ट्रान और स्वतन्त्र प्रोटान होते हैं जो नाभिक से स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। ये तीव्र संचालन है और दूसरे जीवधारियों में शक्ति संचारण, रूपान्तरण व संवहन में सक्षम होते हैं। सुषुम्ना नाड़ी एवम् मस्तिष्क में घनीभूत अवस्था में पाये जाते हैं। ये दूरियों को शीघ्रता से लांघ सकते हैं। इस खोज ने मात्र भारतीय दर्शन के सूक्ष्म शरीर की अवधारणा को ही पुष्ट किया है। यह सभी खोज वैज्ञानिकों की बालकोचित प्रयास जैसा ही है।

अतः हमें योग सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन तथा साधना रूपी प्रयोग द्वारा ही इन प्रश्नों का यथार्थ समाधान प्राप्त होगा है। योगी अपने संयम द्वारा स्वयं नूतन सृष्टि निर्माण में सक्षम है। श्री प्रभुजी कहा करते हैं कि हिमालय के योगी खेल खेल में ब्रह्मा की सृष्टि की तरह अपनी नूतन सृष्टि कर लिया करते हैं। संकल्प के निःसृत होने के अल्प समय में सृष्टि प्रादुर्भूत हो जाती है तथा महायोगी के चाहने पर इतने ही स्वल्प समय में तिरोहित भी हो जाती है। सृष्टि के सभी घटक तत्व अव्यय अनादि है। प्रयोगकर्ता योगी अपने संकल्प बल से उन घटकों का सहयोग लेकर सृष्टि कर लेता है।

आत्मा एवम् शरीर सम्बन्ध की सुन्दर उपमा नये और पुराने वस्त्र से दी गयी है जिसे सूक्ष्म रूप से योगी ही जानता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

भगवान श्रीकृष्ण नरश्रेष्ठ अर्जुन को निमित्त बनाकर हम सभी जीवों को उत्साहित एवम् उद्बोधित करते हुए कहते हैं—

तस्माद्योगी भवार्जुन

योग हो साकार मेरा

श्री कैलाश नारायण पाण्डेय

चाह मेरी
राह तेरी
जब चलोगे
तब मिलूँगा।
प्रवाह तेरा
जब उठेगा
स्वांस मेरा
तब चलेगा।
फिर
अमर गहराइयों में
डूबता ही मैं रहूँगा।
यहां
तेरे पद कमल का
उर सतह पर
हो निरन्तर
अनुगमन शीतल—
[illegible]
दिव्य-प्रेम-सुधा
पानकर
चमकता रहेगा।
तव-चरण-रज
किरण से हो
आत्म-स्वत्व शून्य
करण-कारण-कर्म की
हो दिव्यता साकार
निष्काम भाव सहित और
कार्य तेरे,
मनुहार मेरे छंद तेरे
बोल दें
आह्लाद को
सब समर्पण पूर्ण हो
और योग हो साकार मेरा।

R B-II/760 B रानी लक्ष्मी नगर
झाँसी

मिथ्याचारी कौन है?

जो असत्य होते हुए सत्य जैसा दीखे वही मिथ्या है। जो असत् को ही सत् दिखाये वही मिथ्याचारी होता है। मिथ्याचारी बाहर से दीखता है बिल्कुल ठीक, किन्तु भीतर होता है बेठीक।

—साधु वेश में पथिक

—: शक्ति पर्व और चतुर्थ आयाम :—

श्रीमती रामकुमारी डोहरी

हाँ, तो आज हम यहीं से बात शुरू करें। आज हम संतुष्ट हैं, आश्वस्त हैं। गर्व है हमें कि विज्ञान के युग में जी रहे हैं। विज्ञान की परिधि में बहुत निकट हो चुकी है, पाताल से अंतरिक्ष तक, पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण। हम चारों ओर से-अंदर और बाहर विज्ञान से ही आवृत्त हैं। हम विज्ञान के महा समुद्र में उतरा रहे हैं। इससे बढ़कर और कौन सी परिस्थिति मनुष्य जीवन को ही सताती है?

परन्तु मैं मन को क्या कहूँ-जिसमें विज्ञान का यह विराट कलेवर मात्र एक बिन्दु बनकर रह जाता है। ऐसा बिन्दु-जो अभी निस्पंद है। उसमें नाद उत्पन्न नहीं हुआ है। उसमें छुपा हुआ कुनमुना रहा है। उसकी हलचल तो समझ में आ रही है पर वह अभी मुखरित तो हुआ नहीं है, प्रतीक्षा है-गड़गड़ाहट है थरथराहट है, नाद भी निरन्तर बन हो रहा है।

मेरे मन में उद्बोधन हो रहा है-सत्य-शिवं- सुन्दरं से साक्षात्कार हो रहा है। यह हमारा विश्व प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ रहा है। इससे पहले कि यह वृद्धावस्था को प्राप्त हो-अपनी अनुभूति-संचित कर जाना चाहता है। यह तो उसकी परम्परा है। उसे कोई रोक नहीं सकता। यदि आज हम द्रष्टा बन जायें तो सृष्टा की कारीगरी देखने और समझने का हमें यह अच्छा अवसर प्राप्त हो गया है।

विज्ञान ने यह संकल्प लिया था कि वह सत्य की खोज करेगा। जो सत्य उसके समक्ष प्रकट होगा। उसी को वह स्वीकार करेगा। अन्य को नहीं। उसने अपने इस सत्य व्रत का पूर्ण निर्वाह किया है। इसी साधना का यह विशुद्ध परिणाम है कि उसने अकल्पनीय

(पिछले पृष्ठ का शेष)

नौका का अवलम्बन लेकर ही संसार सागर से कोई व्यक्ति पार हो सकता है अन्यथा आवागमन के चक्राकार भंवर में फँसा हुआ ऊपर नीचे होता रहता है।

अनेक शक्तियों को हस्तगत कर लिया है।

यदि हम यह समझें कि—'शक्ति संचित करने का तरीका' ही विज्ञान है—तो यह परिभाषा—कहीं से भी गलत नहीं लगती। विज्ञान का विराट कलेवर—इसमें सहज ही समा जाता है।

सभी वैज्ञानिकों को शुरू से ही—हठ-योगी महसूस किया है। और अब यह [illegible] अन्यथा नहीं लगता।

यदि विज्ञान जगत इस तथ्य को स्वीकार कर सके तो अनेक ऊहापोह खत्म हो सकते हैं। विशेष कर विज्ञान अध्यात्म का [illegible]। विज्ञान ने प्रारम्भ से ही सत्य का व्रत लिया और समर्थता से उसका निर्वाह भी किया तो अब उसे घबराना नहीं चाहिए।

दरअसल में विज्ञान की सत्ता को खोजना इसलिए थी कि उसने पहले से ही यह निश्चित कर लिया था कि ऐसा कोई सत्य है ही नहीं जो उससे परे हो।

हठ-योगी—अहं-ब्रह्मास्मि—की साधना करता है। सोऽहं ही उसका मूल मन्त्र है।

और विज्ञान ने भी तो—अहं-ब्रह्मास्मि की ही साधना की है। सोऽहं उसका भी तो मूल मन्त्र है।

आज दिग्दिगन्त के कण-कण से अहं-ब्रह्मास्मि-सोऽहं की अनवरत गूंज उठ रही है, इस गूंज को रोकने की किसमें सामर्थ्य है? यह गूंज ही तो वह नाद है और यह नाद ही वह नाद है जिसके द्वारा विश्व की अनुभूति का जन्म होता है।

अरे बहादुरों! अपने सत्य का परित्याग मत करो। जो सत्य तुम्हारे सामने है, उसे सहर्ष वरण करो। अपने को समर्पित कर दो। पलायन से लाभ कुछ भी नहीं होगा। सत्य की खोज करते-करते तुम्हारा ब्रह्म भी प्रस्फुटित हो गया है। अब तुम वापिस लौट नहीं सकते। इसलिये अच्छा—आगे बढ़ो! अपने को समर्पित कर दो। तुम्हें भय लग रहा है। विराट भय। क्या मुँह दिखाओगे दुनिया को? क्या जवाब दोगे? तुम्हें समस्त विश्व सर्वे-सर्वा मानता व पूजने लगा है, तुम्हारे इशारे पर नाचते हैं सब लोग। तुम खिलाओ तो खायें। तुम पिलाओ तो पियें। तुम पहनाओ तो पहनें। यहाँ तक कि तुम जो श्वास दो तो सांस लें। फिर भी तुम्हीं सर्व पूज्य हो। कैसे कहोगे कि यह सब झूठ है। यह सब गलत है, बड़े बड़े गहरे हैं तुम्हारे पूजा-अर्चना और नींव हो जायेगी। व और अधिक तुम पर आश्रित हो जायेंगे।

हे बाबा जी! लेकिन तुम तो अब समझ गये हो कि अब तक तुमने जो कुछ भी था वह

वस्तुतः असत्य था। सत्य तो अब प्रज्ञा—लोक में प्रस्फुटित हो रहा है।

यहाँ कितना विशाल परिवर्तन होता है। तुम देख रहे हो ना। इस विशाल को–इस युग के साक्षात् सिद्धहस्त–हठयोगी आइंस्टीन ने सर्वप्रथम देखा था। लेकिन वे भयभीत नहीं हुए थे। आह्लाद से सराबोर हो गये थे वो सचमुच महर्षि थे–तपस्वी और योगी थे। आह्लाद से सराबोर–भरपूर।

योगी तो तुम भी हो–परन्तु भोग ने तुम्हारे अन्दर अवसाद भर दिया है। यह अवसाद ही तुम्हें भयभीत कर रहा है। तुम्हें सता रहा है–तुम्हें पलायनवादी बना रहा है।

तुम तो सत्य के खोजी हो। खोजने का तरीका तो तुम्हें आता ही है। अवसाद को भग जाओ। भोग को समर्पण में परिवर्तित कर दो। फिर देखो–तुम आह्लाद से सराबोर हो जाओगे। तुम्हें परमसत्य से–साक्षात्कार होगा। वास्तव में यही सत्य–तुम्हारा अवश्य अभीष्ट है।

आज तक तुमने और किया ही क्या है ?

तथाकथित–सत्य की खोज अर्थात् विज्ञान के द्वारा–तुमने अपने भोग के ही साधन तो जुटाये हैं। लेकिन क्या यही तुम्हारा वह परम सत्य है–जिसे तुम खोजते चले थे ? आज तुम नहीं–के सिवा और कोई उत्तर दे नहीं सकते।

जब योगी–अपने मैं–भोग को संचित करके उसे समर्पण में परिवर्तित करता है तो उसमें सर्वप्रथम सहस्रदली समर्पण–कमल–प्रस्फुटित होता है और इस कमल के प्रस्फुटित हुये बगैर तुम सत्य का साक्षात्कार–कर ही नहीं सकते।

अभी तक तुम सत्य की खोज के लिए–प्रकृति की अनेकानेक शक्तियों का अवतरण अपनी प्रयोगशाला में करते रहे। फिर भी जो सत्य तुम पाना चाहते थे वह पा नहीं सके। तुम्हारा विश्वास था कि–विश्व में ऐसा कुछ है नहीं–जो तुमसे बढ़कर हो। परन्तु आज तुम्हारी प्रयोगशालायें–संकेत दे रही हैं कि–इस विश्व में–कुछ है– जो तुमसे बढ़कर है।

जो कुछ तुमसे बढ़कर है–उस सत्य को जानने के लिए–अब तुम्हें प्रकृति की प्रयोगशाला से–उपक्रमण करना है। तरीका यही है–सिद्धान्त यही है–बस स्थिति बदल रही है। साहस कर सकोगे ?

शाबाश मेरे वीरो ! तुम सचमुच सत्यान्वेषी हो। तुमने प्रकृति को प्रयोगशाला में उपकरण

पूर्णतया स्वीकार कर लिया है। तुम अपने अन्दर झांक कर देखो—तुम उपकरण बनने के बाद भी सर्वथा वैसे ही हो। तुम अच्छी तरह अनुभव कर सकते हो—जो कुछ तुमने खोया वह अब तुम्हारे अन्दर समाया हुआ है, उसमें से एक कण भी विनिष्ट नहीं हुआ। फिर भी ना वह ठोस है—ना द्रव है—और ना गैस रूप में है। उसमें कोई—लम्बाई चौड़ाई और मोटाई भी नहीं है। उसने मन के अन्दर कोई स्थान भी नहीं घेरा। अरे! क्या अजीब है यह मन। इसमें तो अनेक संसार समा सकते हैं। फिर भी यह शून्य है खाली है—बड़ा आश्चर्य! छोटी सी बात—अभी तक हमने उसे पहचाना ही नहीं। सारी दुनियां की खाक छान आये और जो हमारे इतना सन्निकट था उससे दोस्ती ही नहीं की। कैसे करते? मन का उपकरण निर्माण कर रहा है। परिणाम घोषित कर रहा है। पदार्थ की तीन नहीं—चार अवस्थायें होती हैं।

ठोस—द्रव—गैस और चौथी—आकृति क्यों—चौंक क्यों गये? क्या सत्य नहीं है? तुम्हीं ने तो खोया है।

तुम्हारे सामने यह विराट विश्व फैला हुआ है। इसका संचालन तुम्हारी कल्पना से परे सूक्ष्म गणितीय पद्धति से हो रहा है, तुम हो तो नहीं। यह तो तुम जानते ही हो कि जोड़ गणित सामान्य प्रारम्भिक गणित है। सूक्ष्म गणित में प्रवेश करने के लिये बीजगणित और रेखागणित की ही आवश्यकता होती है। यदि हम बीजगणित को अक्षर विज्ञान और रेखा गणित को आकृति विज्ञान कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। और अक्षर विज्ञान अन्ततः सूक्ष्म होकर आकृति विज्ञान में ही समाहित हो जाता है।

अतः यह स्पष्ट है कि आकृति की अवधारणा के बगैर न तो पदार्थ में गति हो सकती है और न सृष्टि का सृजन। हम अभी तक विज्ञान को काल को गति से मापते रहे हैं, विज्ञान के सिद्धान्त इसी आधार पर निर्मित हैं। परन्तु सत्य यह है नहीं। काल ही गति का जनक है। इस परम सत्य को सर्वप्रथम तर्कवेत्ता महर्षि आईन्स्टीन ने समझा था। उन्होंने जो भी कुछ समझा उसे वैज्ञानिक समीकरण में प्रस्तुत किया। किसी ने उसे स्वीकार किया और किसी ने नहीं। परन्तु आज हम उस सत्य को मानने के लिये विवश हैं।

काल तो अनन्त और अनादि है। हम उसे माप नहीं सकते। जो भी हम उस को नापते हुए हैं। जो अनन्त है उसका स्वाभाविक गुण होता है अनन्तता। यही कारण है कि काल में ही अनन्त सृष्टियां जन्म लेती रहती हैं और इसमें

धाय होने के गुण के कारण ही उसमें समाहित होती रहती है। यदि हमें उस प्रकार सिद्धि के से कुछ पाना है तो समर्पण के द्वारा ही उससे मन चाहा पा सकेंगे। उसका अधिकार किसको से कैसे पायेंगे ?

यह मात्र रेखांकित है। आकृति पूर्ण है। इसमें विज्ञान द्वारा खोजे गये सिद्धान्त उल्टे हो जाते हैं। यही चतुर्थ आयाम है। यहीं भौतिक विज्ञान अध्यात्म विज्ञान बनता है। हम अणु से बिन्दु बनते हैं। यहीं हम सृष्टि कर्ता की कारीगरी देखने के दृष्टा बनते हैं यहाँ हम परिपूर्ण होते हैं। और यह सब होता है केवल मनुष्य आकृति के माध्यम से। यही परम पुरुषार्थ है— मनुष्य का जीवन का।

अब हम इस चतुर्थ आयाम के सिद्धान्तों की प्रारम्भिक विवेचना करें। हमारी यह मनुष्य आकृति विज्ञान की खोज के अनुसार जैविक भौतिकी और जैविक रसायन के अन्दर समायी हुई है। इसके अन्दर भी पदार्थ ठोस द्रव गैस रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। जो तत्व बाहर हैं वे सभी तत्व इस मनुष्य आकृति में उल्टे होकर कार्य करते हैं। इस कार्य से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसी से जीवन चलता है। यदि यह उल्टा क्रम मनुष्य आकृति में किसी कारण से सीधा हो जाय तो यह अपनी आकृति अवस्था से परिवर्तित होकर ठोस द्रव गैस की समानावस्था में आ जाती है। इसी को हम मृत्यु कहते हैं। यहीं भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान में मत भेद है। यदि मतभेद नहीं है तो सामंजस्य भी नहीं होता है।

भौतिक वैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य आकृति के विनष्ट होते ही हम पूर्णतः विनष्ट हो जाते हैं। अध्यात्म विज्ञानी मानते हैं कि मनुष्य आकृति के अन्दर कुछ ऐसा है जो फिर भी विनिष्ट नहीं होता और जो विनष्ट नहीं होता वही हम हैं। अतः अमर-अमर हैं।

आइये हम इसे अपनी प्रयोगशाला में समझा ने की कोशिश करें।

विश्व का प्रत्येक कण काल में समाहित है। हम पदार्थ को किसी भी रूप में परिवर्तित कर दें, चाहे नितान्त नया रूप ही क्यों ना देदें, परन्तु उसे काल से विछिन्न-हम कदापि नहीं कर सकते। चूँकि काल की रेखांकित-आकृति पूर्ण है। अतः प्रत्येक पदार्थ को चरम परिणित आकृति में समाहित होना है।

स्थूल पदार्थ की चरम परिणिति-मनुष्य आकृति है। जैसा समायोजन-इस मनुष्य आकृति में हुआ है-वैसा कोई अन्यरूप-मनुष्य आकृति-बना नहीं पाई। यह इस मनुष्य आकृति का-विधान है भी नहीं। हम जो हैं-उसे जानने की प्रयोगशाला है यह

मनुष्य आकृति।

भौतिक विज्ञान ने प्रकाश की खोज करते करते दर्पण में प्रकाश के परावर्तन का सिद्धान्त खोज लिया। इसी आधार पर दर्पण में प्रतिबिम्ब बनता है। हमने यह भी भली प्रकार ज्ञात कर लिया है कि यह प्रतिबिम्ब असत्य होता है।

चूंकि हम आकृति स्वयं देख नहीं पाते अतः दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर सत्य से अवगत होते हैं। इसी प्रकार हम वास्तव में जो हैं वो देख नहीं पाते। अतः अपने अस्तित्व से ही इन्कार कर बैठते हैं। लेकिन हमारे अन्दर भी ऐसा दर्पण है जिसमें झांककर हम अपने अस्तित्व के सत्य से अवगत हो सकते हैं। मन ही वह दर्पण है जिसके द्वारा उस परम सत्य को पाने में सक्षम हो सकते हैं जो हमारा लक्ष्य है

हमारा मन भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान दोनों की मिलन स्थली है। बगैर भौतिक विज्ञान के हम अध्यात्म विज्ञान से परिचित नहीं हो सकते।

मन के दर्पण में हम जिससे परिचित होते हैं वह है काल। भौतिक विज्ञान प्रकाश के समानान्तर चलता है और अध्यात्म विज्ञान काल के समानान्तर। यह काल ही हमारा अपना अस्तित्व है। मनुष्य आकृति के विनष्ट होने पर भी यह विनष्ट नहीं होता। यह काल उस महा काल की आकृति है जो वस्तुतः कभी विनष्ट होता ही नहीं। अक्षय अजर-अमर किन्तु निस्पंद। अपने को स्पंदित करने के लिए महाकाल-महाकाली की आराधना उपासना-पूजा-अर्चना करते हैं। महाकाली प्रसन्न होकर महाकाल को स्पंदित कर देती है। तब वह सत्-चित्-आनन्दमय हो हो उठते हैं। सत्यं शिवं सुन्दरं परिभाषित होते हैं।

जब महाकाल गर्वोन्मत्त होकर महाकाली को तिरस्कृत कर बैठते हैं तो महाकाली अपने पदाघात से उनका गर्व चूर्ण कर उन्हें खण्ड-खण्डमें विभाजित कर देती है, फलतः वे उन्हें निस्पंद कर कहीं चली जाती हैं। महाकाल को अपनी भूल ज्ञात होती है। महाकाल अपने को स्पंदित करने के लिए महाकाली को प्रसन्न करने में लग जाते हैं। उनकी यह प्रणय लीला अनवरत चलती रहती है।

जब महाकाली द्वारा महाकाल खण्ड खण्ड विभाजित होते हैं तभी यह दृश्य सृष्टि उत्पन्न होती है। हमारा अस्तित्व महाकाल का विभाजित खण्ड ही तो है। हम जीने के लिए नहीं मरते वरन् मरने के लिये जीते हो हैं। है ना उल्टा। पर सत्य यही है।

यदि हम मरना सीख जांय तो जीवन

बहुत विस्तृत हो जाय। पर हम हैं कि जीने को व्रत माने बैठे हैं इसीसे बारम्बार मर रहे हैं। जीवन हमसे छिनता जा रहा है हम फिर भी उसे हर कीमत पर समेटना चाहते हैं। क्या इस तरह हम उसे समेट पायेंगे।

आखिर आ ही गया विज्ञान, हठयोगियों की खोजों में। हठयोगभी प्रारम्भ से ही इसी सिद्धान्त को मानकर चलता है। तुम मृत्यु को मार दो, फिर अमर हो जाओगे। जीवन अनन्त अनादि हो जायगा। तुम खंड मात्र नहीं रहोगे। महाकाल बन जाओगे।

परन्तु एक परम तथ्य, तुम विस्मृत मत कर देना। जिस तरह महाकाल निस्पंद है। महाकाली उनकी आराधना, उपासना से प्रसन्न होकर उन्हें स्पंदित करती है और तिरस्कार की स्थिति में अपने पदाघात से उन्हें खण्ड-खण्ड कर अन्ततः निस्पंद कर देती है। उसी प्रकार तुम काल खण्ड हो, निस्पंद हो। अपनी काली की आराधना उपासना करो—ताकि वह प्रसन्न होकर तुम्हें स्पंदित कर दे।

यह शक्ती-काली-मातृरूप-आद्या शक्ति है। शक्ति कभी भोग्या नहीं हो सकती। जो शक्ति को भोग्या समझता है, वह स्वयं शक्ति द्वारा भोगा जाता है। और जो भोगा जाता है वह निस्पंद हो जाता है।

भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान में यही अन्तर है कि भौतिक विज्ञान शक्ति को भोग्यरूप में देखता है, इसलिये वह स्वयं भोगा जाता है। आज वह निस्पंद होने के कगार पर खड़ा है।

अध्यात्म विज्ञान शक्ति को मातृ रूप में देखता है। उसकी उपासना आराधना करता है। इसलिये वह स्वयं उपास्य आराध्य बनता है। स्पंदित होकर महाकाल में समाहित होता है। अणु से विभु, अक्षर, अमर, बनता है। सत्, चित्, आनन्दमय, सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् परिभाषित होता है।

काल निस्पंद होकर भी रहता तो महाकाल में ही है। लेकिन उसकी गति चैतन्य के विपरीत जड़ होती है।

अध्यात्म विज्ञान में काल की चतुर्थ स्थिति आकृति संस्कार कहलाती है। यह संस्कार ही विशुद्ध गणितीय पद्धति से मन के द्वारा जीवन प्रवाह को संचालित करता है।

इसी संस्कार की शक्ति से हम मनुष्य जीवन में आकर चाहे जड़त्व की ओर चलें और वह मनुष्य आकृति में ही सम्भव है।

—

क्या विज्ञान जो सत्य का खोजी है इस परम सत्य को आत्मसात करने का साहस करेगा?

श्री गुरु-महिमा

श्री रामयश उपाध्याय, कछवा (मीरजापुर)

श्री गुरु की महिमा पुराणों और शास्त्रों में गाई गयी है। श्री सद्गुरु की प्राप्ति पुरातन पुण्यों एवं जन्म जन्मान्तर के सम्बन्धों से ही होती है। उनकी सेवा ईश्वर की ही सेवा है, ईश्वर मौन मूर्ति है पर गुरु ईश्वर की मुखर मूर्ति है। बिना गुरु कृपा के संसार सागर से पार होना नितान्त मुश्किल है क्योंकि श्री गुरु महाराज ज्ञान विश्वास और भक्ति को देने वाले हैं, वैराग्य और योग की प्राप्ति भी श्री गुरु प्रसाद से ही सम्भव है, तभी तो 'सद्गुरु ज्ञान विराग योग के' कहा गया है। श्री गुरु की पीयूष मयी वाणी सांसारिक विष को नष्ट करने वाली है, तथा वे ही इष्ट देव के स्वरूप भी हैं। कहा भी गया है—

नमोऽस्तु गुरवे तस्माद्
इष्ट देव स्वरूपिणे।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति
विषं संसार संज्ञितम्॥

ईश्वर के रुष्ट हो जाने पर सद्गुरु के माध्यम से जीव की रक्षा हो जाती है पर गुरु के रुष्ट होने पर या उनका विरोध करने पर त्रैलोक्य में कोई त्राण देनेवाला नहीं है जैसा कि रामचरितमानस एवं गुरु गीता में कहा है—

राखइ गुरु जौं कोप बिधाता।
गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।
हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता
गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन
गुरु माराधयेद् बुधः॥

सच तो यह है कि गुरु का दर्जा ईश्वर से भी बड़ा है—कबीरदास जी के सामने एकबार

(पिछले पृष्ठ का शेष)

हमारी भारतीय संस्कृति में शक्ति पर्व वर्ष में दो बार आते हैं। क्यों? क्योंकि कि ये शक्ति पर्व हमें भौतिक विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान दोनों की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत कराते हैं। शक्ति पर्व का उद्गम चतुर्थ आयाम है, जिसको प्राप्ती का ही साधन केवल मनुष्य आकृति है। यही वह क्षेत्र है, जहाँ पहुँच कर फिर और कुछ पाना शेष नहीं रहता।

समस्या आ गयी उनके सामने उनके गुरु और ईश्वर दोनों प्रगट हो गये। अब वे प्रथम किसको सम्मान दें, पर उन्होंने जो निर्णय लिया वह बड़ा ही यथार्थ था। उन्होंने कहा कि मैं तो पहले गुरु को ही सम्मान दूंगा क्योंकि उन्होंने ही तो ईश्वर का साक्षात्कार कराया है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े
काके लागों पांय।
बलिहारी गुरु आपनो
गोविन्द दियो बताय॥

गुरु की बताई हुयी सांकेतिक प्रणाली पर चल कर वे साधना के क्षेत्र को पार करते हुये सिद्धावस्था में पहुंच गये और उस अवस्था में ईश्वर स्वयं उन्हें पुकारने लगा जिसका वर्णन स्वयं उन्होंने निम्न शब्दों में किया है।

मन ऐसा निर्मल भया
जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरें
कहत कबीर कबीर॥

हम सांसारिक प्राणियों की स्थिति ठीक उस भ्रमर जैसी है जो कमल पुष्प के मकरन्द का पान करता हुआ आह्लादित अनुभावों के साथ बन्द हुये कमल में स्वयं बन्द हो जाता है और उस बन्धन को अपनी शक्ति से विस्मृत हो सोच रहा है कि—रात बीतेगी सुहावना प्रभात आवेगा, भगवान सूर्य उदित होंगे और यह कमल खिलेगा इस प्रकार की परिकल्पनाओं में व्यस्त वह मधुप उस पुष्प के अन्दर बैठा रह जाता है तभी अर्ध रात्रि के बाद काल रूप गज उस सरोवर में क्रीड़ा के निमित्त पहुंचता है और उस पद्म-पुष्प के साथ ही भ्रमर को भी विनिष्ट कर डालता है—जैसा निम्न श्लोक में कहा गया है—

रात्रिर्गमिष्यति
भविष्यति सुप्रभातम्।
भास्वानुदेष्यति
हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं विचिन्तयति
कोश गते द्विरेफे।
हा हन्त, हन्त!
नलिनीं गज उज्जहार॥

इसी सन्दर्भ में गोस्वामी श्री तुलसीदास ने भी कहा है—

मोह निशा सब सोवनि हारा।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥

पर साथ ही गोस्वामी जी की इस परिकल्पना से हम आशान्वित हो उठते हैं—

एहि जग यामिनि जागहिं योगी।
परमारथी प्रपंच वियोगी॥

सब सुखहिं अनुभवहिं अनूपा ।
अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

× × × ×

तो वे ब्रह्मरूप करता स्वरूपानन्द योगी भी यथा कथा अर्ध रात्रि के पश्चात् ब्राह्म मुहूर्त में स्नान हेतु सरोवर में पहुँचते हैं और स्नान के बाद अपने इष्ट स्वरूप परम प्रभु के चरणों में समर्पित करने के लिए उन अविकसित कमल पुष्प को लाते हैं।

प्रभु के पादारविन्दों में अर्पित अरविन्द बाल भास्कर की कनक मयी किरणों के साथ जब विकसित होता है तो उसमें से निकला हुआ अंबरीष कोटि कोटि कन्दर्प की शोभा को विलज्जित करने वाली नयनाभिराम परम लावण्यमयी महा प्रभु की मनोरमा सुषमा को देख आनन्द विभोर हो उठता है। साथ ही उसका कल्याण भी हो जाता है।

ज्ञान स्वरूप गुरु ही सदाशिव है और कल्याण स्वरूप सदाशिव ही सद्‌गुरु है जिनके सहारे वक्र शशांक भी वन्दनीय हो जाता है

वंदे बोध मयं नित्यं
गुरु शंकर रूपिणम् ।
यमाश्रितोहि वक्रोऽपि
चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥

श्री गुरु में मानव बुद्धि रखना अपनी ही अज्ञानता है। शास्त्रों ने स्पष्ट किया है कि गुरु सत्ता ही ईश्वर सत्ता है अतः उसमें ईश्वरत्व दर्शन होता है। श्री अग्रदास जी ने भी इसे अपने शब्दों में उसे इस तरह व्यक्त किया है-

गुरुन विषै नर बुद्धि जिन्हा
सम मनै विष्णुजन ।
चरणामृत जल जान
मंत्र वदै वानी सम ॥
महा प्रसाद हि अन्न
साधु की जाति पिछाने ।
तै नर नर्कै जाय
वेद स्मृती बखाने ॥
अग्र कहै यह पाप पट
अति मोटो दुर्घट संकट ।
और पाप सब छुटै पैहन
मिटै हरि नाम रट ॥

गुरु हमें अज्ञान तम से निकाल ज्ञान के प्रकाश के शाश्वत राज्य में पहुँचा देता है। उसकी वाणी भी मोहान्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों के समान है। गुरु शब्दार्थ भी तो यही है—

"गु शब्द स्त्वन्धकारः—
स्याद् रु शब्द स्तन्निरोधकः ।
अन्धकार निरोधित्वाद्—
गुरु रित्यभिधीयते ॥

× × × ×

बन्दौ गुरु पद कंज,
कृपासिन्धु नर रूप हरि ।

महामोह तम पुंज
जासु बचन रविशंकर निकर ।।

सर्व देवों के रूप में गुरु का दर्शन होना साधना की उच्चावस्था है कहा भी गया है:-

आचार्यं मां विजानी—
याचावमन्येत्कर्हिचित् ।
न मर्त्य बुद्धया ऽसूयेत—
सर्वदेव मयो गुरुः ।।

श्री रामचरितमानस में सर्वत्र गुरु की महिमा का वर्णन है एकाध प्रसंग नीचे उद्धृत किया जाता है।

एक बार भगवती महिमामयी जगदम्बा उमा ने भगवान शिव से संसार के प्राणियों की हित कामना को लेकर प्रश्न किया कि महाराज ! यदि ईश्वर सर्वत्र है तो लोग उसे देख क्यों नहीं पाते ? भगवान कह सकते थे कि ईश्वर चर्म चक्षुओं से कहीं दिखाई नहीं पड़ता या ईश्वर को देखने के लिए लोगों के पास दृष्टि ही नहीं है, पर उन्होंने इन बातों को कहते हुए एक अद्भुत वाक्य जोड़ दिया, उन्होंने कहा :—

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना ।
राम रूप देखहिं किमि दीना ।।

अभी तक ऐसा समझा जाता है कि अपने को देखना सरल है और दूसरों को देखना कठिन होता है लेकिन बात उल्टी हुई, दूसरों को देखने के लिए केवल दृष्टि की आवश्यकता पर है, अपने को देखने के लिए दृष्टि और दर्पण दोनों की ही आवश्यकता है। दृष्टि के अभाव में व्यक्ति अपने को नहीं देख सकता और दृष्टि रहते हुए भी अपने को देखने हेतु दर्पण आवश्यक है, अगर दृष्टि भी हो, दर्पण भी हो तो भी दर्पण के गन्दा होने पर व्यक्ति स्वयं को नहीं देख पाता। दृष्टि वाला अपने स्वरूप को देखने के लिए नितान्त मलिन दर्पण को धूल के कणों से, जल से व कपड़े से जब साफ करता है तो उसका शारीरिक स्वरूप उसमें परिलक्षित होने लगता है। श्री रामचरितमानस में कवि कुल चूडामणि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने इस मन को ही दर्पण बताया है, पर मन सांसारिक वासनाओं से इतना धुँधला हो गया है कि उसमें स्वरूप दर्शन करना अत्यन्त दुर्लभ है, तब उन्होंने इस मन मुकुर की स्वच्छता के लिए जिन रज कणों का वर्णन किया वो वास्तव में अत्यन्त वास्तविक है। वह रजकण हम सभी के मन को हमेशा स्वच्छ करते रहें यही प्रभु से याचना है, उन्होंने कहा है :—

श्रीगुरु चरण सरोज रज,
निज मन मुकुर सुधारि ।।

भूल करना मानव स्वभाव है और क्षमा

प्रेरक प्रसंग—

गुरु आज्ञा पालक

श्री कृष्णकुमार पाण्डेय एम० ए०

गुरुदेव की प्रसन्नता इस बात में निहित है, कि शिष्य कैसे गुरुदेव के पास रह कर उनके श्री चरणों की सेवा करके अपनी सुप्त चेतना को जगाने में सफल हो सकता है। गुरुदेव अपने शिष्य को अच्छी प्रकार समझकर तथा उसको संस्कारित जानकर उसकी इच्छाओं की पूर्ति करा ही देते हैं? आज ऐसे ही प्रसंग को प्रस्तुत लेख में उद्धृत करने का विचार है।

एक बार एक साधक जिसका ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम था, साथ ही वैराग्य की तीव्रता से जिसका हृदय निर्मल हो चुका था, एक दिन अपने सिद्ध गुरुदेव के पास बैठा था। सायंकालीन वातावरण में गुरुदेव अपने अन्य शिष्यों के साथ आसन के ठीक सामने बैठकर वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर ईश्वर चर्चा सुना रहे थे। थोड़ी दूर पर एक कुआं था, जिसमें किसी वृक्ष की जड़ उसके अन्दर के अन्त तक पहुँच गयी थी। वह साधक गुरुदेव के पास बैठकर उनके श्री चरणों में अविचल दृष्टि डाले मौन बैठा था। गुरुदेव पहले से ही इस साधक के प्रति संवेष्ट थे। आज साधना की इस भंगिमा को देखकर तथा उपयुक्त ईश्वर दर्शनाभिलाषी जानकर हृदय में गुप्त प्रेम के उद्गार उठ गये। साधक के मन में भी यह इच्छा बराबर बनी रहती थी कि गुरुदेव, मेरे इष्ट दर्शन की इच्छा को अवश्य पूर्ण करेंगे। आज शिष्य के इष्ट के प्रतिष्ठा का दिन था। इसलिये आज इसको दर्शन कराना उपयुक्त होगा, ऐसा मन में विचार कर श्री श्री गुरुदेव साधक को बुलाकर बोले—वत्स! कुएं के पास वृक्ष की एक डाल को काट सकोगे क्या? यद्यपि वृक्ष पर चढ़ना कठिन कार्य था फिर भी साधक गुरुदेव की आज्ञा-पालन में पहले से ही बहुत सतर्क

(पिछले पृष्ठ का शेष)

करना मानव धर्म। अतः यदि मानवस्वभाववश इस वर्णन में कोई त्रुटि हो गयी हो, इस लघु लेख में जो सहसा भूल समझ आप सभी लोग उसे क्षमा करेंगे ऐसा विश्वास है।

था। गुरुदेव के मुख से इस आज्ञा को सुनकर वह तुरन्त अपनी ढीली धोती को समेटते हुए तैयार हो गया। गुरुदेव बोले—अन्दर से कुल्हाड़ी ले लो, किन्तु एक बात को ध्यान में रखना कि जिस डाल को काटोगे उसकी तरफ तुम्हारी पीठ होनी चाहिए। उपस्थित समुदाय इस बात को सुनकर बड़ा विस्मित हुआ। जिस डाल को काटना था, वह डाल कुएँ के ठीक बीच में कटने के बाद गिरेगी और उस की तरफ पीठ करके काटने का अर्थ था, काटने वाला डाल के साथ ही कुएँ में गिरेगा, साधक ने उत्साह से गुरुदेव की आज्ञानुसार उसी तरफ पीठ करके काटना शुरू कर दिया। डाल के कुछ कटने के बाद गुरुदेव उसकी परीक्षा के लिए कुछ भ्रम में पड़ने वाली बात को लक्ष्य करके बोले—जिस डाल को तुम काट रहे हो उसके बारे में क्या विचार किया है। साधक बोला—गुरुदेव की आज्ञा में विचार क्या? महाराज आपकी आज्ञा साधकों के लिए कभी भी अहितकार नहीं हो सकती। साधक गुरुदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके पुनः अपने काम में लग गया।

उपस्थित साधक समुदाय को भी गुरुदेव वृक्ष की डाल को काट रहे साधक के बारे में बतला रहे थे। उस समुदाय में से एक साधक का चित्त गुरुदेव की उस रहस्य भरी वाणी में नहीं लग रहा था। वह बार-बार उस साधक के बारे में विचार करता रहा। अन्त में हाथ जोड़कर बड़े विनीत भाव से खड़ा होकर बोला—महाराज, आप उसको डाल काटने से मना कर दें, अन्यथा वह कुएँ में गिरकर अवश्य मर जायेगा। साधक गुरुदेव के सामर्थ्य को नहीं समझता था। इस लिए इस प्रकार का कौतूहल उसके मन में घर कर गया था। गुरुदेव उसके चित्त में कौतूहल को देख एक मधुर मुस्कान डाल कर बोले—उस को कुछ नहीं होगा। तुम यहीं बैठे देखते रहो। उधर साधक गुरुदेव के आज्ञानुसार डाल को बड़े उत्साह पूर्वक काट रहा था। डाल काटने के अलावा उसके चित्त में कोई विकार नहीं था। आज वह गुरुदेव की इस आज्ञा को पाकर अपने को निहाल समझ रहा था। इन्हीं विचारों में मग्न तथा गुरुदेव के चरण-चिन्तन में लीन वह कटते हुए डाल के साथ कुएँ में गिर पड़ा। शिष्य को उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसको सहारा देकर कुएँ में उतार दिया हो। कुएँ में डाल के साथ गिरते हुए उसको दिव्य अलौकिक प्रकाश पुञ्ज दीखना शुरू हो गया। अपने इस अलौकिक प्रकाश-दर्शन में साधक अपने इष्ट को अद्भुत मंगलाकार प्रकाश-पुञ्ज में देखकर परम आनन्द में लीन हो गया। साधक का उस समय बाह्य ज्ञान समाप्त हो गया था। उसके अन्दर चित्त में गुरुदेव की कृपा से दिव्य

प्रकाश प्रज्ज्वलित हो उठा। उसी क्षण में ही वह साधक इष्टदेव में तन्मय होकर गुरुदेव व इष्ट का बारम्बार आरती की भाँति दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करने लगा।

इधर साधक समुदाय उस डाल के गिरने की आवाज को सुनकर विस्मित हो गए लेकिन गुरुदेव से कुछ कहने में असमर्थ रहे। गुरुदेव साधक समुदाय के अन्तःकरण की बात जानकर बोले—अरे, उसको देख आओ क्या वह डाल काट चुका? शिष्य दौड़ा गया, वहां पहुँचकर उसने देखा। साधक डाल के साथ कुएँ में गिर पड़ा है। परन्तु आश्चर्य यह था कि कुएँ का जल कहां चला गया? इसने तो कुएँ में गिरकर अपने शरीर का अन्त कर दिया। किन्तु साधक की इस विशेष स्थिति को न जान सका। मात्र इतना ही देखा कि कुएँ का जल सूखा है। वहां से भागकर वह गुरुदेव के पास आया तथा गुरुदेव के सम्मुख हाथ जोड़कर बोला—महाराज वह कुएँ में गिरकर मर गया, लेकिन एक विचित्र बात यह है कि कुएँ में जल भी सूख गया है।

गुरुदेव ने बैठे साधक समुदाय पर एक मुस्कान फिर डाली और वहीं से बैठे ही शिष्य का नाम लेकर पुकारा। गुरुदेव की वाणी साधक को उस स्थिति में भी सुनायी दी। एक बार साधक को गुरुदेव की पुनः आज्ञा मिली। परन्तु इस बार आज्ञा का पालन ऐसी स्थिति में जाकर और वहां से पुनः लौटकर करना था। साधक का मन वहां से आने में अलसाया परन्तु गुरुदेव की आज्ञा थी। इसलिए गुरुदेव की ही कृपा से पुनः वह अपने पूर्व स्थिति में आ गया और उसके इष्ट भी वहीं से अन्तर्धान हो गये। साधक कुएँ में उठ खड़ा हुआ। गुरुदेव ने उसको कुएँ से निकालने की आज्ञा दी। साधक उस पेड़ के सहारे जो कुएँमें पड़ी था बाहर आकर अश्रु पूरित नेत्रों से श्री प्रभु के चरणों में आनन्द से लोट गया।

इन विभिन्न स्थितियों को मात्र उपयुक्त साधक और कृपा कारक गुरुदेव ही जान सके, अन्य साधक समुदाय नहीं समझ सका। पुनः गुरुदेव ने उस साधक के बारे में संकेत से बताया। इस प्रकार साधक गुरुदेव की कृपा से अपने इष्ट-दर्शन को प्राप्त किया। —○—

अटल विश्वास

श्री पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा, "भगवत्प्राप्ति का छोर (उपाय, सिलसिला) क्या है?" महादेव जी बोले, "विश्वास ही इसका ओर-छोर है। गुरु वाक्य में अचल और अटल विश्वास के बिना सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।" —रामकृष्ण परमहंस

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

(आरण्यक सूक्तियाँ)

मनसा वा अग्रे कीर्तं यति तद् वाचा वदति ।
तस्मात् मन एव पूर्वं रूपं वागुत्तर रूपं ॥

आरण्यक

अर्थात् मनुष्य सर्व प्रथम मन में सोचता है, फिर उसी को वाणी से बोलता है, अतः मन पूर्व रूप है और वाणी उत्तर रूप है।

× × × × ×

स्थाणुरयं भारहारः किला भूद् ।
अधीत वेदं न विजानीत योऽर्थम् ॥

आरण्यक

अर्थ--जो वेदों को पढ़कर भी उनका अर्थ नहीं जानता वह भार ढोने वाला मजदूर है। और है फल-फूल विहीन केवल सूखा ठूंठ।

× × × × ×

अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात् सर्वौषध मुच्यते ।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्धन्ते ॥

प्राणी जगत में अन्न ही श्रेष्ठ है। अन्न को समस्त रोगों की औषध कहा है। (क्योंकि अन्न से ही प्राणी पैदा होते, और अन्न से ही बढ़ते है।)

× × × × ×

यथा वृक्षस्य सं पुष्पितस्य दूराद् गन्धो वाति ।
एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वाति ॥

अर्थ— जिस प्रकार सु पुष्पित वृक्ष की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है। उसी प्रकार पुण्य कर्म की सुगन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है।

चित्त मेवहि संसारस्तत् प्रयत्नेन शोधयेत् ।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्य मेतं सनातनम् ॥

अर्थ—चित्त ही संसार है, इस लिए प्रयत्न करके चित्त को ही शुद्ध करना चाहिए। जैसा चित्त होता है वैसा ही मनुष्य बन जाता है—यह सनातन रहस्य है।

× × × ×

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभा शुभम् ।
प्रसन्नाऽऽत्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमव्ययम श्नुते ॥

चित्त के प्रसन्न एवं निर्मल तथा तथा शान्त हो जाने पर शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और प्रसन्न एवं शान्तचित्त मनुष्य जब आत्मा में लीन होता है तब वह अविनाशी आनन्द प्राप्त करता है।

× × × × ×

तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात् सं प्राप्यते मनः ।
मनसा प्राप्यते त्वा त्मा ह्यात्माप त्या निवर्तते ॥

अर्थात् तप द्वारा तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है, सत्त्व से मन वश में आता है। मन वश में आने से आत्मा की प्राप्ति होती है। और आत्मा की प्राप्ति हो जाने पर संसार से छुटकारा मिल जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

× × × × ×

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत् ।
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति ॥

दो ब्रह्म जानने योग्य हैं। १—शब्द ब्रह्म २—परं ब्रह्म। जो साधक शब्द ब्रह्म में निष्णात होता है वही पर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

× × × × ×

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं काम सम्पर्को च्छुद्धं काम विवर्जितम् ।

मन दो प्रकार का है शुद्ध और अशुद्ध। कामनाओं से सहित मन अशुद्ध है और कामनाओं से रहित मन शुद्ध।

× × × × ×

समाधि निर्धू त मलस्य चेतसो, निवेशित स्यात्मानि यत सुखंभवेत्ति ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

समाधि के द्वारा जिसका मल दूर हो गया है और जो आत्मा में लीन हो चुका है, ऐसे चित्त को जिस आनन्द की उपलब्धि होती है उसका वर्णन वाणी द्वारा नहीं किया जा सकता। वह तो केवल आन्तरिक अनुभूति के द्वारा ही जाना जा सकता है।

—सं० [illegible]

शंकर की सत्ता

श्री महाकवि शंकर

तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगल मूल,
पत्ता भी हिलता नहीं खिले न कोई फूल ।१

जिसकी सत्ता में भरे मायिक भेद अनेक,
सो शंकर संसार का कारण केवल एक ।२

मुख्य नाम है ईश का ओमद्भुत प्रसिद्ध,
योगी जपते हैं इसे सुनते हैं सब सिद्ध ।३

भानु, चन्द्र, तारे, अग्नि, चपला, उल्कापात,
शंकर तेरी आरती करते हैं दिन-रात ।४

तू मुझसे न्यारा नहीं मैं तुझसे कब दूर,
तेरी महिमा से मिली मेरी मति भरपूर ।५

प्यारे तू सबमें बसे तुझमें सबका वास,
ईश हमारा है तुही हम सब तेरे दास ।६

जब सच्चिदानन्द का देखा सकल स्वरूप,
शंकर तू भी हो गया परम रंक से भूप ।७

जो तुझसे न्यारा नहीं नित्य निरंतर साथ,
हा वह विद्या के बिना अबलों लगा न हाथ ।८

प्यारे प्रभु की ज्योति का देख अखण्ड प्रकाश,
सत्य भान हो जायगा मोह तिमिर का नाश ।९

भई न है ना होयगी अधिक न तुल्य न और,
सर्वशक्ति सम्पन्न है एक शक्ति सब ठौर १०

प्रातः—सायं

हे भगवन्,

हमारा हृदय प्रातः समय उत्साह, उत्सुकता, क्रियाशीलता से भरा हो; सायंकाल के समय तृप्ति, निवृत्ति, शान्ति का परिचायक हो।

हे भगवन्,

हमारा हृदय सेवा की लता से ही सराबोर हो।

हमें सेवा के सिवा और कुछ न सूझे, सेवा में ही जीवन का आनन्द रहे।

सेवा अनासक्त हो, उसका अभिमान हमें न हो।

हे भगवान,

हम सबके उदय के लिए सोचने तथा काम करने वाले बनें।

इसके विपरीत जब हर एक अपने लिए सोचता तथा काम करता है तो उसका परिणाम होता है बेकारी, बेरोजगारी, पापवृत्ति, भ्रष्टाचार।

अपसेवन की परिस्थिति से हमें बचाना।

सेवा का बल

मेरे नाथ,
आप अपनी
सुधामयी सर्वसमर्थ पतित पावनी अहैतुकी कृपा से
दुखी प्राणियों के हृदय में
सेवा का बल
प्रदान करें
जिससे वे
सुख दुःख के बन्धन से मुक्त हों
आपके पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर
कृतकृत्य हो जायें।
ओम् आनन्द ओम् आनन्द ओम् आनन्द।

—ओमप्रकाश मिश्रा

एक दिन की बात--

श्री दर्शनानंद

प्रयाग राज में संगम की परम पावन भूमि पर प्रतिवर्ष माघमेला–एक धार्मिक–महा मेला का रूप लेकर आयोजित होता है। उत्तर भारत के प्रायः सभी साधु-सन्त, महन्त और मठाधीश, भक्तयोगी, हठयोगी, सिद्ध योगी, तपेश्वरी, यती और मुनीश्वर, संन्यासी ब्रह्मचारी और गृहस्थ, लाखों की संख्या में शामिल होकर विविध धार्मिक आयोजनों के लाभान्वित होने का प्रयास करते हैं। इस धार्मिक मेले की विशालता का अनुभव करके इसकी समुचित व्यवस्था राज्य सरकार और जिला परिषद तथा तथा नगर महापालिका प्रयाग के मिले-जुले प्रयासों से होती है जो सराहनीय ही रहती है।

इस धार्मिक महा मेले में श्री सिद्धगुफा का योग शिविर भी प्रतिवर्ष श्री गुरुदेव की भगवान की अनुमति से लगाया जाता है। श्री गुरुदेव जी स्वयं यहां आश्रम के ब्रह्मचारियों और दूसरे कार्यकर्ताओं के साथ विराजमान रहकर यहां यौगिक-सत्संग की व्यवस्था का संचालन करते हैं। सिद्धगुफा के इस माघमेला शिविर का लाभ उन बहु संख्यक गुरु भाई-बहनों को भी अनायास मिल जाता है जो यहां आकर माघ स्नान का पुण्य प्राप्त करना चाहते हैं। भोजन, आवास और तीर्थ राज में गुरु चरणों का सान्निध्य सभी कुछ उन्हें इस शिविर में सुलभ रहता है। सूर्योदय से पूर्व जब सुहावनी उषा वेला में पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी शिविर प्रवासी योगानुरागी अपने बालकों के साथ संगम स्नान को जाते हैं तब एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव सभी को होता रहता है, श्रीगुरुदेवजी की अहैतुकी कृपा से सभी के तन मन में अलौकिक प्रसन्नता और उल्लास बना रहता है। इस मेला शिविर में नियमित चलते सायंकालीन वेला में गुरुजी के बोध वर्द्धक योग प्रवचन और संगीत एवं बहुत तथा सभी को भाव-विभोर बनाने वाला संकीर्तन नियमित रूप से चलता रहता है।

एक दिन जब श्री गुरुदेव जी योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के यौगिक क्रिया कलापों का वर्णन कर रहे थे तब सहसा एक ऐसा अंश आया, जब उनकी आँखें सजल हो गईं। कुछ क्षणों

के लिए उनके प्रवचन की शृंखला का प्रवाह भी अवरुद्ध हो गया। लेकिन तुरन्त ही उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—'जिन महात्मा अखिल लोक पावन और ऐश्वर्यों के धनी भगवान श्रीकृष्ण के स्तुत्य जीवन प्रसंग मैं मैं तुम सब को बता रहा हूँ उनका चित्र गले में लटकाये हुए अथवा माथों में उनका चित्र लगाये हुए जब मैं उनके नाम पर अपना पेट पालने के लिए साधुओं और भिखारियों को भीख मांगते जब देखता हूँ तो मुझे असह्य वेदना होती है, लोगों की यह पतनोन्मुखी वृत्ति देखकर रोना आता है। कहाँ वह महान योगी जिसका ध्यान मात्र ही योगी का योग करते चलता है, संसार के सारे कष्ट जिसके स्मरण मात्र से विलीन हो जाते हैं, और कहाँ यह स्थिति कि उनके नाम रूप को आश्रय बनाकर भिखमंगों की यह टोलियां, छल और दिखावट के सिवाय इस अवस्था को और क्या कहा जा सकता है।'

'कृष्ण जगद्गुरु योगेश्वर थे, उनके योगिक जीवन के अलौकिक चरित्र महाभारत और श्री मद्भागवत् में जगह जगह प्रचुरता से भरे पड़े हैं। इनसे शिक्षा लेकर हम सब अपने जीवन को उज्ज्वल बना सकते हैं। कोई भी उनका उपदेश हमें भिखारी बनने की प्रेरणा नहीं देता। तस्मात् योगी भवार्जुन ही उनके उपदेश का सार रहा है।'

श्रीगुरुदेवजी का आज का यह प्रवचन बहुत ही प्रभावशाली रहा था, 'कृष्णायन्ते जगद् गुरो' की ध्वनि करतलध्वनि के साथ सभी श्रोताओं ने सभास्थल से प्रस्थान किया और उपस्थित श्रोताओं में से अनेक यह प्रतिज्ञा लेकर विदा हुए कि भविष्य में कृष्ण भगवान के नाम पर भीख मांगने वालों को वे कोई दान नहीं देंगे।

इसप्रकार माघमेला में सिद्धकुल शिविर बड़ी उपयोगी शिक्षाओं से पूर्ण रहा है, इस में इलाहाबाद निवासी सभी गुरु भाई बहनों की सेवा बहुत सराहनीय रही है, उनकी गुरुभक्ति और आश्रम भक्ति दोनोंही भावनाएं शिविर में दृष्टि गोचर होती रहती हैं।

❀ कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल बिन्दु जिस प्रकार अस्थिर है उसी तरह यह जीवन भी नितान्त अस्थिर है। भूलना नहीं, सदैव स्मरण रहे कि सम्पूर्ण मानव-जाति दुःख अहंकार आदि व्याधियों का शिकार है।

❀ श्रीगुरु के चरण-कमलों में अनुराग करो और जगत के इस दलदल से अपने को एकदम मुक्त कर लो। अपनी इन्द्रियों को एवं मन को अन्तर्मुखी करो अन्तःस्थ ईश्वर का दर्शन करो।

—एक साधु

कमला का दर्पण

ब्रह्मचारी श्री अखिलानंद

छोटी-सी कमला ने अपनी माँ से कहा, "माँ, तुमने मुझे जो आइना दिया है उसमें चेहरा ठीक नहीं दिखाई देता।"

माँ ने कहा, "शीशा चिकना और मैला है, इसलिए उसमें चेहरा ठीक तरह से नहीं दीखता। लाओ, उसे साफ कर दूँ।" माँ ने आइने को पोंछ करके साफ कर दिया। अब छिटिया को उसमें अपना चेहरा साफ दिखाई दिया और वह खूब खुश हुई।

ध्यान में भगवान का दर्शन करने का रहस्य भी यही है। हम अपने हृदय को स्वच्छ रखें तो ईश्वर को देख पायेंगे। राग-द्वेष आदि से मलिन हृदय में ईश्वर का रूप कभी नहीं देख सकते। एक दम स्वच्छ हृदय वाले श्री रामकृष्ण भगवान का दर्शन पाकर आनन्द में मग्न हो जाते थे। उन्होंने दूसरों को भी यही उपदेश दिया। हम उनके उपदेश को समझकर लाभ उठायें।

तालाब के स्थिर पानी में तट के पेड़ों, आकाश आदि सबके प्रतिबिम्ब साफ दीखते हैं। हवा से पानी जब विचलित होता है तो कुछ नहीं देख सकता। यदि हम हृदय में कोई लहरें न दें, इच्छा, क्रोध और द्वेष रूपी आँधी से हृदय को बचाये रखें।

छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा करने में कोई हानि नहीं। हम उनको धीरे से संतोष कर लें, इच्छाओं को बहुत तीव्र न होने दें। बुद्धि से लोभ और मोह को रोक सकते हैं और हृदय को पवित्र रखकर उसमें भगवान का स्वच्छ प्रतिबिम्ब देख सकते हैं।

संसार का जीवन एक बहुत ही गहरे कुएँ के समान है। कोई बच्चा यदि उस कुएँ में, एकदम किनारे खड़ा होकर नीचे झांके तो हम उसे अवश्य मना करेंगे। जीवन में कई खतरे हैं, जिनमें गिर पड़ने पर निकलना दुष्कर होता है।

किसी ने पूछा, "क्रोध और लोभ हमसे छूटते ही नहीं। इसके लिए क्या किया जाय?"

श्री रामकृष्ण ने स्वभाव पर विजय पाने के लिए यह उपाय बताया, "यदि अपने मन से इच्छा-क्रोधादि को निकालकर सर्वथा असमर्थ रहे तो उनको शक्ति भर बदलने का प्रयत्न करो। अपनी इच्छा को ईश्वर के प्रति लगाओ। ईश्वर को पाने में ही अपनी शक्ति का सदुपयोग करो। उसका दर्शन न मिले तो क्रोध भी उसके साथ करो। अपने आवेगों का इस प्रकार शमन करो।"

जब हम लोग बड़े-बड़े भयंकर जंगली जानवरों को काबू में कर लेते हैं तो मन को वश में करना भी संभव होना चाहिए। मन भी एक मस्त जानवर होता है। यदि हम स्वयं लोभ-विचार रूपी घने जंगल में भयकारी दुष्ट जानवर को मनमाना फिरने दें तो उसे काबू में लाना बहुत मुश्किल हो जायगा। बुद्धिरूपी अंकुश से उसे रोकते रहना चाहिए।

पंच चित्त शक्ति रश्मि प्रवाह

योगीराज श्री बालमुकुन्द जी

प्राणोपान समानश्-
चोदानव्यानौ च वायवः ।
हृदि प्राणो ऽपानः-
समानो नाभिमण्डले ॥
उदानः कण्ठदेशे-
स्याद् व्यानः सर्व शरीरगः ।
(अमर कोष)

(१) प्राण, (२) अपान, (३) समान, (४) उदान, (५) व्यान, (६) नाग (७) कूर्म (८) कृकल (९) देवदत्त (१०) धनञ्जय ।

यह दस प्राण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो कर उसका संचालन करते हैं। (दि० ब्रा० २।२८।६।२, तै० ब्रा० ३।१०।८।६, आत्मोपनिषद् १७, गोरक्ष पद्धति श्लो० ३।२३) इन दस प्राणों में निम्नलिखित पाँच योग में मुख्य माने जाते हैं अतः इनको प्राण कहते हैं (छान्दोग्य उपनिषद)

(१) प्राण हृदय में वास कर नासिका के नीचे से हृदय तक की क्रियाओं का संचालन करता है।

(२) अपान प्राण नाभि के नीचे गुदा के पास रह कर उसका संचालन करता है और स्वाभावतः मलमूत्रादि बाहर निकालता है।

मुण्डक ४/६/२८

(३) समान प्राण हृदय के नीचे से नाभि तक रह कर उसका संचालन करता है और शरीर को पुष्ट करता है।

(४) उदान प्राण कण्ठ से ऊपर तक रह कर उसका संचालन करता है।

(५) व्यान प्राण सर्व शरीर में व्याप्त रह कर उसका नियोजन करता है।

बाकी नागादि और पाँच प्राण का कर्म चर्म और हड्डियों में मुख्यतः यह पंच प्राणात्मक शरीर में रहकर उसका संचालन षट् चक्रों की आज्ञा में रह कर करते हैं।

भा० प० ब्रा०

प्रत्येक प्राण में एक अद्भुत शक्ति है जिसे तेज या आभा या आउरा कहते हैं । पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इसे रेडियो धर्मी ऊर्जा या विकरण बताया है जो कि मानव शरीर के चहुँ (चारों) ओर पाया जाता है। इस सूक्ष्म प्राण विकरण का सम्बन्ध मानव की जीवनी शक्ति से होता है जो कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न मात्रा में होता है और शारीरिक विकास से बदलती रहती है। ये पंच प्राण मुख्य चिन्मई महती शक्ति पर आधारित पंच विध प्रवाह है जो कि मनुष्य के गठन, वर्द्धन और विनाश रूप कार्य में व्याप्त हैं। इसी अन्तःकरण शक्ति प्रवाह को लक्ष्य करके विशेष भाव से प्राण प्रतिष्ठा करने का उपनिषदों का निर्देश है।

सावधान !　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　सावधान !!

धोखे और धोखेबाजों से बचें

मुझे यह सूचित करते हुए बहुत दुःख हो रहा है कि कितने ही चंट लोग धूर्तता से भोले और सत्य मार्ग पर चलने वाले मेरे वात्सल्यी बच्चों से पैसा झटक लेने के लिए अपना कृत्रिम जाल फैला लेते हैं। ये मेरे नाम के कृत्रिम पत्र (लेटर हेड) बनाकर उसपर मेरे बनावटी हस्ताक्षर तक बनानेकी चालबाजी कर लेते हैं। ऐसे बनावटी जाली पत्रोंको लेकर फिर यह धूर्त लोग आश्रम के और मेरे अपने भक्तों के बीच में जा पहुँचते हैं और पत्र दिखाकर कहते हैं कि यह गुरुजी का आदेश पत्र है, हमें उनकी आज्ञा से अमुक स्थान पर आश्रम खोलना है या पाठ-शाला कायम करनी है अथवा अपनी लड़की की शादी करनी है, इत्यादि बातों को आधार बनाकर प्रचुर मात्रा में धनसंग्रह का प्रयत्न करते हैं और आश्रम तथा मेरे प्रति श्रद्धा रखने वाले बच्चे उनकी धोखे भरी बातों में आकर उन्हें यथा-शक्ति आर्थिक सहायता भी कर देते हैं।

वस्तुतः ऐसा मेरा कोई आदेश अथवा आज्ञा पत्र नहीं होता। मेरी ओर से कभी भी ऐसे पत्र किसी को नहीं लिखे जाते ऐसे जाली पत्र बनाकर धोखे से पैसा संग्रह करने का काम चालबाज लोग ही करते हैं। अतः सभी आश्रम प्रेमी बालकों को ऐसे पत्रों और पत्र लाने वालों से सावधान रहना चाहिए।

मैं अपने सभी अनुरागी बच्चों को इस विज्ञप्ति के द्वारा यह सूचित कर देना उचित समझता हूँ कि वे पूर्णरूप से सावधान रहें और ऐसा पत्र प्रस्तुत करने वाले को कभी कोई धन न दें तथा ऐसा पत्र लेकर यदि कोई उनके पास आये तो उसके नाम, पता आदि की जानकारी मुझे पत्र द्वारा दे दें।

शुभेच्छु —
चन्द्रमोहन (योगिराज)

सिद्धयोग का नववर्ष-प्रवेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आनन्द कन्द परम करुणानिधान योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पावन जयन्ती के अवसर पर श्री गुरुदेव भगवान राम की जयन्ती की मधुर स्मृतियाँ भी लिए हुए रहती है 'सिद्धयोग' अपने जीवन के १६ वर्ष पूरे करके नये १७ वें वर्ष प्रवेश कर रहा है। कठिनाइयों और आर्थिक विषमताओं से भरे हुए इसके पिछले १६ वर्षों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यह विश्वास सुदृढ़ होने लगता है कि महाप्रभु जी की असीम कृपा शक्ति और श्रीगुरुदेवजी की संकल्प शक्ति मात्र ही 'सिद्धयोग' का जीवन सम्बल रहा है। यह सम्बल ही सामान्य प्रकाशन मार्ग की अनेक दुरूहताओं के बाद रहने पर भी इसे अपने ध्येय और लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता रहा है। जैसा कि 'सिद्धयोग' के सभी प्रेमी पाठकों को मालूम है कि सिद्धयोग महाप्रभु जी के सिद्ध मार्ग का समर्थक और प्रचारक है। पिछले सोलह वर्षों में उसने हिन्दी के योग-सम्बन्धी प्रकाशन साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। योग का मार्ग ही मनुष्य के कल्याण और भारतीय समाज के चरित्र निर्माण का प्रधान आधार है, इस दृढ़ धारणा को भारतीय जन-मानस में बैठाने के लिए, उसे आत्मसात कराने के लिए ही 'सिद्धयोग' का जन्म हुआ था। श्री गुरुदेव जी के विशेष लेख और विद्वान लेखकों के समय-समय पर भेजे जाते रहे विचार पूर्ण लेख, सूक्तियों की प्रेरक रचनाएँ सभी का सहयोग लेकर अपने इस जन्म जात उद्देश्य की पूर्ति में यह सतत संलग्न रहा है, 'सिद्धयोग' का क्षेत्र बढ़ाने में भी आश्रम से सम्बन्धित गुरुदेवजी के अनेक प्रिय शिष्यों ने, गुरु भाई बहनों ने तथा आश्रम प्रवासी सभी ब्रह्मचारियों ने और देश भर में फैली हुई श्री सिद्ध गुफा की शाखा प्रशाखाओं के कार्यकर्त्ता भाई-बहनों ने स्वयं इसके ग्राहक बनकर तथा दूसरों को बनाकर अपना जो अमूल्य सहयोग प्रदान किया है वह सब ही गुरुदेव के परम आशीर्वाद और सिद्धयोग प्रकाशन की ओर से बधाई तथा धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में मैं सम्पादन सम्बन्धी भूलों और त्रुटियों के लिए स० सम्पादक के नाते क्षमायाचना करते हुए पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी के चरणों में अपना नमन और वन्दन करते हुए सिद्धयोग के प्रेमी पाठकों से यह निवेदन करना चाहूँगा कि सिद्धयोग को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिए वे इसके दो-दो चार ग्राहक बना देने का संकल्प लेने की कृपा करें। उन का इतना सा सहयोग 'सिद्धयोग' का प्रचार क्षेत्र बढ़ाने में बहुत सहायक होगा।

विनत—

दिव्य, संयुक्त सम्पादक

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर

हमारी साधना का स्वरूप है—प्रवृत्ति से निवृत्ति ओर बढ़ना। अहंभाव से मुक्त होकर प्रभुमय होना, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होने के लिए हमें धीरे-धीरे 'पर' (परद्रव्य और 'स्व' आत्मतत्त्व) का निर्णय कर लेना चाहिए। 'पर' से दूर रहकर अथवा अनासक्त होकर 'स्व' की प्राप्ति करना तथा उसमें स्थित रहना आवश्यक है। साध्य के निर्णय होते ही साधना का प्रारम्भ होता है। पर-पदार्थों से विरक्ति हो जाने पर ही मन की मुक्ति होना सम्भव है। विषयों से, कषायों से विरक्ति, अथवा पर-द्रव्यों की आसक्ति का परित्याग एवं अन्तर्वर्ती अभिनिवेश का त्याग होने पर ही हम परमात्मतत्त्व-दर्शन के अधिकारी होते हैं। अथवा तभी आत्मस्वरूप में सहजभाव से स्थित होना सम्भव। मैं कौन हूँ? मैं यह इन्द्रिय-मन-बुद्धि जड़ देह नहीं हूँ मैं वस्तुतः चैतन्य हूँ, आनन्दरूप हूँ। मैं ज्योति हूँ। किन्तु वस्तुतः मैं इन्द्रियों के साथ संलग्न होकर, इन्द्रियों के वशीभूत होकर, विषयों में फँसकर, पर-द्रव्यों से लिप्त होकर, जीव रूप में दुःखी होता जा रहा हूँ। मैं स्थान-भ्रष्ट हो गया हूँ। मैं इन्द्रिय दास होकर विषम दुःखमय कुपथ पर आरूढ़ हो गया हूँ। जब संसार के सभी पदार्थ मुझसे भिन्न हैं और मैं कुछ भी साथ लेकर उत्पन्न नहीं हुआ हूँ और न एक भी पदार्थ मृत्यु के उपरान्त मेरे साथ जायगा, तो फिर पर-द्रव्यों से ममत्व जोड़ना तो एक बड़ी भूल है। आत्मतत्त्व सत् (स्थाई, अनश्वर) है, अनात्म तत्त्व (भौतिक अथवा पर-पदार्थ) असत् (नश्वर) है तथा यह बोध होना विवेक है। विवेक उत्पन्न होने पर न मोह, न भय और न चिन्ता। मोह एक भयानक भ्रम है। मैंने संसार में आकर न जाने क्या क्या पदार्थ यहीं से एकत्रित किये और मैं उनका स्वामी बनने का मिथ्या पाखण्ड कर रहा हूँ, क्योंकि संसार को छोड़कर जाते समय मुझे इन सभी पदार्थों को यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा, वास्तव में संसार की वस्तुओं में से मिट्टी का एक कण भी मेरा नहीं है।

कहै कबीर अन्त की बारी, हाथ झारि के चले जुवारी।

पशु खेत में चारा खाकर, पक्षी फल खाकर तृप्त हो जाते हैं, किन्तु मनुष्य गठरी बाँधकर बोझ उठाना चाहता है यद्यपि हाथ झाड़कर सब कुछ यहीं छोड़ जाता है। मुझे जान लेना चाहिए कि इनके प्रति मोह करना एक अज्ञान है जो दुःखमूलक है। इस अज्ञान के कारण हमारे जीवन में भय और दुःख व्याप्त हो जाता है। 'प्रज्ञामृतं भोजनम्' ज्ञानामृत ही प्रज्ञा का भोजन है। हम छोटी-छोटी बातों के लिए युद्ध कर बैठते हैं। यह ममता नहीं तो क्या है।

—श्री प्रियानन्द

SIDDHAYOGA—Regd. No. L. AG. 008 Apr. 1984

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

को ....

....

....

....

यज्ञ क्या ?

सब प्रकार के लोकोपयोगी कार्यों को यज्ञ कहते हैं। इस संसार का बन्धन यज्ञ = परोपकार = पारस्परिक सहायता है। यदि प्रत्येक पदार्थ निरपेक्ष होकर अपनी सत्ता स्थिर रखना चाहे, तो असम्भव है, क्योंकि सृष्टि के पदार्थ तो बनते ही यज्ञ = संगति के कारण से हैं,अतः इसे संसार का नाभि = बन्धन हेतु कहना सर्वथा संगत है। यजुर्वेद ३१।७ 'तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः। प्रमाण से यज्ञ का अर्थ परमेश्वर भी होता है जो सबका पूजनीय हो, सबको यथायोग्य देता हो, सब पदार्थों की यथायोग्य संगति सम्मेलन करता हो, वह यज्ञ है। परमेश्वर से बढ़कर और किसमें यह गुण हो सकते हैं। परमेश्वर में ये गुण चरम सीमा तक पहुँचे हुए हैं, इस वास्ते वही इस ब्रह्मांड का बन्धन = नियमन करता है। इसको ठीक व्यवस्था से चलाता है। यह संचालन भी उसका यज्ञ ही है।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा-१ फोन ६२१६८